जैनधर्म की कहानियाँ

भाग - 4

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन - सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ४ वाँ पुष्प

ॐ

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग-4)

:: लेखक ::
ब्र. हरिलाल जैन, सोनगढ़

:: अनुवादक ::
सौ. स्वर्णलता जैन, नागपुर

:: सम्पादक ::
पण्डित राकेश जैन, नागपुर

:: प्रकाशक ::

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (छत्तीसगढ़)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४ २५० (सौराष्ट्र)

अबतक - 23,200 प्रतियाँ
षष्टम् आवृत्ति - 2,200 प्रतियाँ (दशलक्षण महापर्व, 2009 के अवसर पर)

न्यौछावर – दस रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान –

1. **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, शाखा – खैरागढ़**
   श्री खेमराज प्रेमचंद जैन, 'कहान-निकेतन'
   खैरागढ़ – 491881, जि. राजनाँदगाँव (म.प्र.)

2. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
   ए-४, बापूनगर, जयपुर – 302015 (राज.)

3. **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
   'कहान रश्मि', सोनगढ़ - 364250
   जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण –
जैन कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर,
जयपुर - 302015
फोन : 0141-2701056
फैक्स : 0141-2708965
मोबा.: 094147 17816

अनुक्रमणिका

1. अंजना चरित्र 11
2. लव-कुश वैराग्य 69

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई। इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से १८ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार २६ पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग ४ के रूप में ब्र. हरिभाई सोनगढ़ द्वारा लिखित सती अंजना चरित्र एवं लव-कुश के वैराग्य को प्रकाशित किया गया है। जिसकी अबतक २३,२०० हजार प्रतियाँ समाज में पहुँच चुकी हैं। इसका हिन्दी अनुवाद ब्र. विमला बेन जबलपुर ने एवं सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अतः हम इन सभी के आभारी हैं।

आशा है पुराण पुरुषों की कथाओं से पाठकगण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। ऐसी भावी योजना में शान्तिनाथ पुराण, आदिनाथ पुराण आदि प्रकाशित करने की योजना है।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीतः

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

प्रेमचन्द जैन
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
''अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़'' के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म
1/12/1978
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
2/2/1993
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक 3 भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

हमारे मार्गदर्शक

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव
पिता – स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती स्व. सन्तोषबाई बरडिया
पिता – स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दम्पत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् 1993 में आप लोगों ने 80 साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष – आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार

पुत्र	पुत्रवधु	पुत्री	दामाद
ललित	लीला	चन्द्रकला	गौतमचंद बोथरा, भिलाई
स्व. निर्मल	प्रभा		
अनिल	मंजु	शशिकला	अरुणकुमार पालावत, जयपुर
सुशील	सुधा		

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी-
मीरायाम प्रशांत भायाणी अमेरिका
श्रीमती अर्चना देवी ध.प. श्री सतीशचन्दजी जैन (ठेकेदार)

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
स्व. धापू देवी ताराचन्द गंगवाल, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़

परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई मेहता, बम्बई एवं
श्री प्रकाशभाई मेहता, नेपाल
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
सरिता बेन ह. पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, तेजपुर
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता

श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
सौ. सुमन जयकुमार जैन, डोंगरगढ़
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर

स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल.जैन, खैरागढ़
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
श्री पारसमल महेन्द्रकुमार, तेजपुर
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

५०१/- रु. देने वाले –

श्रीमती प्रभाबाई प्रेमचन्दजी (नरवर), सोनागिर

२५१/- रु. देने वाले –

श्री खेमराज प्रेमचंद अभय कुमार जैन, खैरागढ़
श्री दुलीचंद कमलेश जिनेश जैन, खैरागढ़
श्री कँवरलाल मोतीलाल जैन, ह. श्री ढेलाबाई, खैरागढ़
झनकारी बाई खेमराज बाफना चैरे. ट्रस्ट, खैरागढ़
ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन, सोनगढ़
पुष्पा बैन भोपाल जैन, दिल्ली
मनन चेतनभाई डगली, घाटकोपर

२०१/- रु. देने वाले –

सौ. मनोरमा विनोद कुमार जैन, जयपुर
श्रीमती ममता रमेश चन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्रीमती सरोदेवी राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर
श्रीमती कमलादेवी पं. ज्ञानचन्दजी, सोनागिरजी
रूबी राजकुमार जैन, धमतरी
प्रीति बैन प्रज्ञा बैन, पालड़ी

१०१/- रु. देने वाले –

श्री पन्नालाल मनोजकुमार गिड़िया, खैरागढ़
श्री पन्नालाल उमेशकुमार छाजेड़, खैरागढ़
ब्र. रमा बैन, सौनगढ़

५१/- रु. देने वाले –

स्र्वणा प्रदीपकुमार जैन, खैरागढ़

सुख के लिये सामग्री नहीं, संतोष चाहिये और संतोष तत्त्वज्ञान बिना संभव नहीं।

विकल्प पर के लिये अकिंचित्कर है और अपने लिये अनर्थ के कारण हैं।

भारी रोग और सस्ता इलाज

नगर सेठ की मृत्यु पर सभी ने शोक मनाया। क्रिया-कर्म से निवृत हो जाने के बाद सेठ के पुत्र ने अपने मुनीम से पूछा – "मुनीमजी ! अपने पास कितना धन है ?" मुनीमजी ने उत्तर दिया– "तीन पीढ़ियाँ खाएँ जितना।" सेठ के पुत्र ने मुनीमजी से तो कुछ नहीं कहा, परन्तु उसे इस बात की भारी चिन्ता सताने लगी कि "चौथी पीढ़ी क्या खायेगी ?"

इस चिन्ता के कारण उसका शरीर दिन पर दिन घुलने लगा। कई वैद्यों और हकीमों से इलाज कराया, पर सब व्यर्थ गया। अन्त में ज्योतिषियों से परामर्श लिया गया। ज्योतिषियों ने परामर्श दिया कि "यदि निरन्तर एक माह प्रतिदिन प्रात:काल गरीबों को अनाज-कपड़ा का दान किया जाए तो रोग टल सकता है।"

ज्योतिषियों के परामर्शानुसार सेठ के पुत्र ने प्रतिदिन प्रात:काल गरीबों को अनाज-कपड़ा का दान देना शुरु कर दिया। एक दिन कोई भी दान लेने नहीं आया, तो व्रतभंग की आशंका से सेठपुत्र घबराया, उसने राह में जाते हुए एक परिग्रह परिमाण व्रती सच्चे श्रावक को गरीब समझकर उससे कहा– "आप दान ले लो, अन्यथा मेरा व्रतभंग हो जायेगा।"

तब वह बोला – "मैं घर जाकर देखता हूँ कि मुझे आज अनाज की आवश्यकता है या नहीं ?" थोड़ी देर बाद आकर वह बोला– "सेठजी आज का काम चल सके – इतना अनाज मेरे घर में है।" सेठ ने कहा – तो कल के लिए ले जाओ। वह बोला – "मैं कल की चिन्ता आज नहीं करता"।

सेठपुत्र के मन में विचार आया कि "यह इतना गरीब होने पर भी यह कल की चिन्ता नहीं कर रहा है और एक मैं हूँ, जो तीन पीढ़ी बाद की चिन्ता करके फिक्र कर मर रहा हूँ।" उसी दिन से वह अच्छा होने लगा। स्वस्थ होने पर उसे उस गरीब व्यक्ति से मिलने पर पता चला कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है, यह तो ज्ञानघन चैतन्य धन का स्वामी सम्यग्दृष्टि अणुव्रती श्रावक है। – ऐसा जानकर उसने शेष जीवन उसी ज्ञानी धर्मात्मा की सत्संगति में रहकर आत्मकल्याण के लिए समर्पित कर दिया। ●

अंजना चरित्र

प्रीति और अप्रीति –

"यह बात उस समय की है, जब भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ का धर्मतीर्थ चल रहा था। अनंतवीर्य केवली के द्वारा धर्मोपदेश का श्रवण कर हनुमान, विभीषण इत्यादि ने व्रत अंगीकार किये, उनमें भी हनुमान का शील एवं सम्यक्त्व विशेष प्रशंसनीय है।"

– इस प्रकार भगवान महावीर की धर्म सभा में गौतम गणधर से हनुमान की प्रशंसा सुनकर राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया –

"हे प्रभु ! ये हनुमान किसके पुत्र थे, इनका जन्म कहाँ हुआ था ? कृपा कर बतलाने का कष्ट करें।

राजा श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर "जिन्हें सत्पुरुषों की कथाओं से विशेष अनुराग है" – ऐसे गौतम गणधर अपनी सुमधुर वाणी में इस प्रकार कहने लगे –

भरतक्षेत्र की दक्षिण दिशा में विद्याधर राजा महेन्द्र राज्य करते थे, उन्होंने एक महेन्द्रपुर नामक सुन्दर नगर की स्थापना की थी। राजा महेन्द्र की जीवन संगिनी का नाम हृदयवेगा था, जिससे अरिन्दम आदि सौ पुत्र एवं अंजनासुन्दरी नामक एक महागुणवान कन्या का जन्म हुआ।

एक बार अंजना सुन्दरी की यौवनावस्था देखकर राजा महेन्द्र को उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई।

अत: उन्होंने अपने बुद्धिमान मंत्रियों को बुलाकर उनसे अंजना सुन्दरी के वैवाहिक सम्बन्ध के संदर्भ में विचार-विमर्श किया कि पुत्री अंजना का शुभ-विवाह किसके साथ करना उचित है ?

राजा द्वारा पूछे गये प्रश्न के प्रत्युत्तर स्वरूप किसी ने लंकाधिपति रावण के नाम का तो किसी ने इन्द्रजीत का तो किसी ने मेघनाथ के नाम का प्रस्ताव रखा।

प्राप्त प्रस्तावों को सुनकर धन्यमंत्री कहने लगे – "हे राजन ! दक्षिणश्रेणी में कनकपुर नामक नगर के राजा हिरण्यप्रभ एवं रानी सुमना का सुयोग्य पुत्र सौदामिनी कुमार (विद्युतप्रभ) है। वह गुणवंत, यशवंत तो है ही, साथ ही पराक्रमी भी ऐसा है कि सारे विद्याधर भी एक साथ युद्ध हेतु प्रस्तुत हों, तथापि उसे पराजित नहीं कर सकते। अत: मेरे विचार से तो राजकुमारी के लिये इससे उपयुक्त वर अन्य नहीं हो सकता।"

धन्यमंत्री के उक्त प्रस्ताव को सुनकर संदेहपराग नामक दूसरा मंत्री अत्यन्त गंभीर होकर कहने लगा –

"यद्यपि यह नि:संदेह सत्य है कि कुमार विद्युतप्रभ महाभव्य है, किन्तु उनके मन में सदैव संसार की अनित्यता – क्षणभंगुरता की विचार-तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं, इतना ही नहीं, वे वैरागी कुमार तो छोटी उम्र में ही इस असार-संसार का परित्याग कर मोक्ष-प्राप्ति हेतु अन्तर-बाह्य दिगम्बर दशा को अंगीकार कर लेंगे और विषयाभिलाषा विहीन वे कुमार विकार एवं अपूर्णता का क्षय करके परिपूर्ण साध्य दशा को प्राप्त करेंगे। ऐसी स्थिति में उनके साथ राजकुमारी अंजना का विवाह करने से कन्या पतिविहीन हो जावेगी।

हाँ ! भरतक्षेत्र की विजयार्द्धपर्वत की दक्षिणश्रेणी में आदित्यपुर नामक नगर है, वहाँ राजा प्रहलाद एवं रानी केतुमति के वायुकुमार (पवनंजय या पवनकुमार) नामक पुत्र है, जो कि महापराक्रमी, रूपवान, शीलवान एवं गुणवान है, वही सर्वप्रकार से कन्या के योग्य उत्तम वर है – ऐसा मेरा मानना है।"

संदेहपराग मंत्री की बात सुनकर सबको अत्यन्त हर्ष हुआ और सभी ने इस सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रदर्शित की।

वसंत ऋतु एवं फाल्गुनी मास की अष्टान्हिका का शुभागमन हुआ। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक चलने वाला पर्व अष्टान्हिका

महामंगल स्वरूप है। इस पावन अवसर पर इन्द्रादि देव तो नंदीश्वर द्वीप में विराजमान शाश्वत जिन-बिम्बों के दर्शन-पूजनार्थ जाते हैं और मानव समाज भी अपनी-अपनी शक्ति एवं भावनानुसार इस पर्व को उत्साह पूर्वक मनाता है।

उस समय महेन्द्रनगर निवासी विद्याधर भी पूजन-सामग्री लेकर कैलाशपर्वत पर पहुँचे। कैलाशपर्वत भगवान ऋषभदेव की पवित्र निर्वाणस्थली होने से परम पावन है – पूजनीय है।

कुमारी अंजना सहित राजा महेन्द्र ने भी वहाँ पहुँचकर जिनप्रभु के दर्शन-पूजन किये, तत्पश्चात् गिरिराज के प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन करने के लिये राजा महेन्द्र एक स्वच्छ शिला पर बैठ गये।

उसी समय कुमार पवनंजय सहित राजा प्रहलाद भी चक्रवर्ती भरत द्वारा निर्मित जिन-बिम्बों के दर्शन-पूजनार्थ वहीं पधारे हुये थे और दर्शन-पूजन से निवृत्त हो, गिरिराज पर ही घूम रहे थे कि अनायास राजा महेन्द्र की नजर उन पर पड़ी। राजा महेन्द्र ने प्राथमिक अभिवादन के पश्चात् उनसे कहा – "हे राजन ! बहुत दिनों से एक विचार मन में चल

रहा कि अपनी प्रिय पुत्री अंजना का शुभ-विवाह आपके सुपुत्र पवनकुमार के साथ कर दूँ, क्या आप मेरी इस विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करने की कृपा करेंगे ?"

इस बात को सुनकर राजा प्रहलाद बोले – "हे राजन् ! यह तो मेरे पुत्र का महान भाग्य है कि उसे अंजना जैसी सुशील जीवन संगिनी प्राप्त हो रही है। आप इस सम्बन्ध को पक्का ही समझिये।"

इस प्रकार अंजना एवं पवनकुमार का सम्बन्ध तो निश्चित हो गया, तीन दिन पश्चात् उसी मानसरोवर पर विवाह होना भी तय हो गया।

अंजना के अद्भुत सौन्दर्य से कुमार पवन अपरिचित न थे, अत: वे उसे देखने के लिये अत्यन्त व्यग्र हो उठे, तीन दिन के विरह को भी सहन करने में वे अपने को असमर्थ पा रहे थे, यही चिन्तन उनके हृदय में चल रहा था कि कब अंजना को देखूँ ?

अत्यन्त व्यग्र होकर उन्होंने यह बात अपने अन्तरंग मित्र प्रहस्त से कही – "हे मित्र ! तुम्हारे अतिरिक्त यह बात मैं अन्य किससे कहूँ ? जैसे बालक अपना दुख माता से, शिष्य गुरु से, किसान राजा से एवं रोगी वैद्य से कहता है। उसी प्रकार बुद्धिमान अपने मित्र से कहता है – यही समझकर मैं अपने मन की बात तुमसे कहता हूँ – "हे मित्र ! राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना को देखे बिना मुझे चैन नहीं है।"

कुमार की व्यग्रतापूर्ण बात को सुनकर प्रहस्त मुस्करा उठा। रात्रि होते ही दोनों मित्र विमान द्वारा अंजना के महल में पहुँच गये। झरोखे में छुपकर अंजना के सौन्दर्य को देखने से कुमार को अत्यधिक हर्ष हुआ।

उस समय सात मंजिले महल में अंजना अपनी सखियों सहित बैठी हुयी थी, तब अंजना की बुद्धिमान सखी वसन्तमाला कहने लगी – "हे सखी ! तुम धन्य हो, तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारे पिता ने पवनकुमार जैसा जीवन-साथी तुम्हारे लिये चुना, पवनकुमार महापराक्रमी भव्यात्मा हैं।"

वसंतमाला की इस बात को सुनकर कुमार आनंदित हो उठे। तभी दूसरी सखी मिश्रकेशी इस प्रकार कहने लगी – "तुम पवनकुमार को पराक्रमी बतलाती हो और इस सम्बन्ध को बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग से बखान करती हो – यह तुम्हारा अज्ञान है। कुमारी का सम्बन्ध यदि विद्युतप्रभ के साथ होता तो बात ही कुछ और होती। अरे ! कहाँ विद्युतप्रभ और कहाँ पवनकुमार – दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। तुम्हें ज्ञात होगा कि पहले सबका विचार विद्युतप्रभ के साथ सम्बन्ध करने का ही था, पर जब महाराज ने सुना कि वे तो कुछ ही समय पश्चात् मुनि होनेवाले हैं, तब इस प्रस्ताव को निरस्त कर दिया गया; किन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं हुआ। अरे ! विद्युतप्रभ जैसे महापुरुष का संयोग तो एक क्षण मात्र के लिये भी श्रेष्ठ है, अन्य क्षुद्र पुरुष के दीर्घकालीन संयोग की अपेक्षा।

सखी की अपमान जनक बात सुनते ही पवनकुमार क्रोधित हो उठे, वे विचारने लगे – "अंजना को मुझसे किंचित् भी स्नेह नहीं है। लगता है विद्युतप्रभ से ही इसका स्नेह है, तभी तो सखी के ऐसे वचन सुनकर भी यह मौन है।"

ऐसा विचारकर उन्होंने क्रोधित हो म्यान से तलवार निकाल ली, किन्तु तभी प्रहस्त मित्र ने उन्हें रोकते हुए कहा – "मित्र ! यहाँ हम गुप्तरूप से आये हैं और इसी तरह वापस चलना चाहिये। प्रहस्त के कथनानुसार कुमार ने क्रोधित दशा में ही वहाँ से प्रस्थान कर दिया, किन्तु वे अंजना की तरफ से एकदम उदास चित्त हो गये, अतः उन्होंने उसके परित्याग का निर्णय कर लिया।

देखो परिणामों की विचित्रता, कुछ देर पूर्व जिसे देखे बिना चैन नहीं था, अब उसी का मुख देखना भी असहनीय प्रतीत होने लगा, रे संसार....!

अपने निवास पर आते ही पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा – "हे मित्र ! अपना स्थान अंजना के निवास के नजदीक है, अतः अब अपने

को यहाँ नहीं रहना है, उससे स्पर्शित होकर आनेवाली हवा भी मुझे कष्टप्रद प्रतीत होती है; अत: चलो, यहाँ से चलें।

कुमार की आज्ञा पाते ही उनके सम्पूर्ण संघ ने प्रस्थान की तैयारी प्रारम्भ कर दी; फलत: हाथी, घोड़े, रथ पैदल आदि सेना में कोलाहल का वातावरण व्याप्त हो गया।

पवनकुमार के संघ के लोग अचानक प्रस्थान का आदेश सुनकर अचम्भित हो उठे कि यह क्या ? बिना कारण प्रस्थान की आज्ञा क्यों ? कोई कहता है कि इसका नाम पवनंजय है, अत: इसका चित्त भी पवन के समान चंचल है।

अंजना का निवास निकट ही होने से कुमार की सेना के प्रस्थान का कोलाहल शीघ्र ही उसके कानों तक जा पहुँचा, उससे उसके हृदय पर मानो वज्रपात ही आ गिरा। वह विचारने लगी – "हाय ! क्या करूँ ? अब क्या होगा ? मेरा तो कोई अपराध भी दिखायी नहीं देता। लगता है मिश्रकेशी द्वारा कथित निंदापूर्ण वचनों की भनक कुमार को लग गयी – यही कारण है कि मेरे प्राणनाथ मुझ पर कृपा रहित हो गये और मेरा परित्याग कर प्रस्थान कर रहे हैं। यदि मेरे प्राणनाथ मेरा परित्याग कर देंगे तो मैं भी अन्न-जल का परित्याग कर शरीर त्याग दूँगी।" – इस प्रकार विचार करते-करते कुमारी अंजना बेहोश हो भूमि पर गिर पड़ी।

अंजना के पिता राजा महेन्द्र को जब कुमार के प्रस्थान के समाचार विदित हुये तो वे अपने बंधुजनों सहित राजा प्रहलाद के निकट आये और दोनों ने कुमार को समझाया – "हे शूरवीर ! प्रस्थान के विचार को निरस्त कर हम दोनों के मनोरथ की सिद्धि करो, गुरुजनों की आज्ञा आनन्ददायिनी होती है, अत: हमारी आज्ञा स्वीकार करो"

– ऐसा कहकर उन्होंने प्रेमपूर्वक कुमार का हाथ पकड़ लिया।

पिता एवं पितातुल्य राजा महेन्द्र के वचनों द्वारा कुमार विनम्र हो

गये और गुरुजनों की गुरुता का उल्लंघन करने में अपने आपको असमर्थ अनुभव करने लगे। अत: प्रस्थान की आज्ञा को तो उन्होंने निरस्त कर दिया, पर मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि अंजना से विवाह करके उसका परित्याग कर दूँगा।

राजकुमार के प्रस्थान न करने के समाचार सुनते ही अंजना का हृदय प्रसन्न हो गया। और फिर लग्न के शुभावसर पर मानसरोवर के किनारे शास्त्रोक्त विधि-विधान पूर्वक पवनकुमार एवं कुमारी अंजना का शुभ-विवाह संपन्न हुआ। अंजना को तो कुमार के प्रति पूर्ण प्रीतिभाव था, किन्तु कुमार का भाव अंजना के प्रति अप्रीतिरूप था, पर इस बात का परिज्ञान अंजना को न था।

यथासमय सभी ने अपने-अपने देशों को प्रस्थान किया।

यहाँ पर गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहते हैं – "हे श्रेणिक ! जो जीव वस्तुस्वरूप को न समझ कर अज्ञानतावश पर के दोष ग्रहण करते हैं, उन्हें मूर्ख समझना चाहिये और दूसरों के द्वारा किये गये दोष अपने ऊपर आ पड़ें तो उसे अपने पाप कर्म का फल समझना चाहिये।"

संयोग एवं वियोग –

पवन कुमार ने तो कुमारी अंजना से विवाह कर उसका इस प्रकार त्याग कर दिया कि वे कभी उससे बात तक नहीं करते। अंजना पति के इस निष्ठुर व्यवहार से परम दुख का अनुभव करती थी। वह रात्रि को नींद भी नहीं ले पाती थी, उसकी आँखों से निरंतर आँसुओं की धारा बहती रहती थी एवं शरीर अत्यन्त मलिन हो गया था। पति के प्रति है अपार प्रेम जिसका – ऐसी उस सुंदरी को पति का नाम भी प्यारा लगता था, उस ओर से आनेवाली हवा भी आनंददायिनी प्रतीत होती थी।

पति का रूप तो विवाह-वेदी पर ही देखा था, निरंतर उसी का चिन्तन करती थी। निश्चलरूप से सर्वचेष्टा विहीन हो बैठी रहती थी। मन

में पति के रूप का चिंतन एवं बाह्य में उनके दर्शन की अभिलाषा युक्त होने पर भी दर्शन न हो पाते थे। तब शोक-संतप्त होकर चित्रपट पर पति का चित्र बनाने हेतु प्रयत्नशील होती, किन्तु हाथ काँपने लगते और कलम गिर पड़ती। – ऐसी दशा हो जाने से अंजना का सर्वांग सुन्दर शरीर भी दुर्बल हो गया, आभूषण ढीले हो गये एवं शरीर पर वस्त्राभूषण भी भाररूप प्रतीत होने लगे।

ऐसी करुणदशा में बारम्बार निज अशुभकर्मोदय की निन्दा करती हुई वह माता-पिता को याद करती। शरीर अत्यधिक शिथिल हो जाने से बार-बार बेहोश हो गिर पड़ती अथवा रो-रोकर कंठ रुँध जाता था, उस समय उस संतप्त हृदय को शान्तिदायिनी शीतल चन्द्र-किरणें भी दाहरूप ज्ञात होती थी।

वेचारी ! विकल्प की मारी, नाना प्रकार विचार करती हुई मन ही मन पति से इस प्रकार अनुरोध करती – "हे नाथ ! आप सदैव मेरे हृदय-कमल पर विराजमान होने पर भी मुझे आताप क्यों देते हैं। जब मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया, तब बिना कारण मुझ पर कोप क्यों ? हे नाथ ! अब तो प्रसन्न होइये, मैं तो आपकी दासी हूँ, मेरे चित्त के शोक का हरण कीजिये। जैसे अन्तर में दर्शन देते हैं, वैसे ही बाहर से भी दर्शन दीजिये – यही मेरी करबद्ध प्रार्थना है।"

इस प्रकार निज चित्त में स्थापित पति से बारम्बार मनुहार करती थी और आँखों से मोती के समान आँसू गिराती रहती।

सखी वंसतमाला अंजना की सेवार्थ अनेक प्रकार की सामग्री लाती, पर उसे तो कुछ भी रुचिकर न लगता। उसका चित्त तो पति वियोग में चक्र की भांति भ्रमित हो गया था। पति वियोग से दुखित वह न तो अच्छी तरह स्नान करती, न बाल संवारती, सर्व क्रियाओं से उदास – ऐसी हो गयी मानो पाषाण ही हो, निरंतर अश्रु-प्रवाह के बहने से मानो जल ही हो, हृदयदाह से संतप्त मानो अग्नि ही हो, सदा ही पति के विकल्प

में रहने के कारण मानो हवा ही हो और चित्त की शून्यता से मानो वह आकाशरूप ही हो गयी हो।

मोह के कारण उसका ज्ञान भी आच्छादित हो गया था, सर्व अंग इतने दुर्बल हो गये थे कि उठना-बैठना भी दूभर हो गया था। बोलने की अभिलाषा करती, पर शब्द नहीं निकलते; पक्षियों से कलोल करने की भावना होती, पर वह भी दुष्कर था – इस प्रकार बेचारी सबसे न्यारी गुमसुम बैठी रहती। उसका चित्त तो पति में ही लगा था, उसको निष्कारण पति-वियोग के कारण एक-एक पल भी एक-एक वर्ष के समान प्रतिभासित होता था।

उसे दुख से दुखित देखकर व्याकुलित हुये परिजन भी ऐसा चिन्तन करते थे – "इसे ऐसा दुख किस कारण से हुआ ? यह तो इसके द्वारा पूर्वोपार्जित पापकर्मों का ही फल है, अवश्य ही इसने पूर्व जन्म में किसी देव या गुरु की विराधना की होगी, उसी का यह फल है। पवनकुमार तो इस दशा में निमित्त मात्र हैं। अरे ! इस बेचारी भोली-भाली से विवाह करके क्यों इसका परित्याग कर दिया, जिसने कभी पिता के घर में रंचमात्र दुख नहीं देखा, वही आज अथाह दुख को प्राप्त हुई है।"

सभी इसीतरह विचार करते – "हम क्या उपाय करें ? अरे ! हम तो भाग्यहीन हैं, यह कार्य हमारे यत्नसाध्य नहीं है। यह तो इसके कोई अशुभकर्म का फल है। हे प्रभु ! कब वह शुभ दिन आयेगा, जब यह अपने प्रीतम की कृपा-दृष्टि प्राप्त करेगी।"

सभी की यही अभिलाषा रहा करती थी।

ऐसे प्रतिकूल प्रसंग के समय अंजना देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करते हुए – इन दुख के दिनों को व्यतीत कर रही थी। उसकी प्रिय सखी वसन्तमाला उसे प्रसन्न करने के लिये हर संभव प्रयत्न करती थी। वे कभी तो आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन की चर्चा करतीं तो कभी देव-गुरु-धर्म की भक्ति करतीं, कभी वीतरागी संतों का स्मरण करते हुये उनकी

वैराग्यभावपूर्ण कथा-वार्ता करतीं, उस समय अवश्य अंजना का दुख कुछ कम हो जाता था।

इस प्रकार सखी सहित अंजना का समय व्यतीत हो रहा था।

बाईस वर्ष बाद....

जिस समय की यह कथा है, उस समय राजाओं पर लंकाधिपति महाराज रावण की आज्ञा चलती थी, किन्तु राजा वरुण ही एकमात्र ऐसा राजा था, जो रावण की आज्ञा का उल्लंघन करता था। उसका कहना था कि रावण को देवों द्वारा प्रदत्त शस्त्रों का गर्व है, किन्तु मैं उसे गर्वरहित कर दूँगा। इसी बात से कुपित होकर रावण ने उसे दैवी शस्त्रों के बिना ही पराजित करने की प्रतिज्ञा कर ली और युद्ध में सहायतार्थ अनेक राजाओं को आमंत्रित किया। पवनकुमार के पिता महाराज प्रहलाद के यहाँ भी पत्र भेजा गया।

पत्र में लिखा था – "समुद्र के मध्यद्वीप में पातालनगर निवासी राजा वरुण को जीतने के लिये हमने युद्ध प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु युद्ध में राजा वरुण के पुत्रों ने हमारे बहनोई खरदूषण को बन्दी बना लिया है, अत: उन्हें छुड़ाने एवं युद्ध में सहायतार्थ आप शीघ्र ही आवें।"

पत्र द्वारा आज्ञा प्राप्त होते ही स्वामी भक्त राजा प्रहलाद महाराज रावण की सहायतार्थ जाने के लिए तैयार हो गये। उन्हें प्रस्थान के लिये तैयार देख कुमार पवनंजय ने कहा – "हे पिताजी! आप युद्ध में पधारने के विचार का त्याग कर मुझे युद्ध में जाने हेतु अनुमति प्रदान करें। मैं शीघ्र ही राजा वरुण को पराजित कर दूँगा।"

तब पिता एवं माता से आज्ञा प्राप्त कर परिजनों को धैर्य बँधाकर भगवान अरहन्त-सिद्ध के स्मरण पूर्वक कुमार ने विदा ली। उस समय अंजना सुन्दरी आँसू-भीगी आँखों से दरवाजे पर खम्बे के सहारे खड़ी थी, जिसे देखकर खम्बे में उत्कीर्ण पुतली की आशंका होती थी।

उस पर नजर पड़ते ही कुमार ने अपनी नजर फेर ली और कुपित

स्वर में कहा – "अरे ! तेरा दर्शन भी कष्टप्रद है, तू इस स्थान से चली जा, निर्लज्ज होकर यहाँ क्यों खड़ी है ?"

पति के ये कर्कश वचन भी उस समय अंजना को ऐसे मधुर प्रतीत हुये, जैसे बहुत दिनों से प्यासी चातक को मेघ की बूँद प्रिय लगती है।

वह हाथ जोड़कर गद्गद् हो कहने लगी – "हे नाथ ! जब आप यहाँ रहते थे तब भी मैं वियोगिनी थी, परन्तु 'आप निकट ही हैं' – ऐसी आशा से प्राण जैसे-तैसे टिके रहे; लेकिन अब तो आप क्षेत्र से भी दूर जा रहे हैं, अतः मैं किस प्रकार जीवित रहूँगी ?

"हे नाथ ! परदेश गमन के इस प्रसंग पर आपने न मात्र नगर के मनुष्यों, वरन् पशुओं को भी धैर्यता प्रदान की है और सभी को अपनी अमृतमयी वाणी से सन्तुष्ट किया है। एकमात्र मैं ही आपकी अप्राप्ति से दुखी हूँ। मेरा चित्त आपके चरणारविन्द का अभिलाषी है, आपने अन्य सभी को अपने श्रीमुख से धैर्य प्रदान किया है, अतः यदि उन्हीं की तरह आप मुझे भी कुछ धैर्य प्रदान करते तो अच्छा था। जब आपने ही मेरा परित्याग कर दिया, तब मेरे लिये जगत में कौन शरणरूप है ?"

तब कुमार ने मुँह बिगाड़कर कुपित स्वर में कहा – "मर !" इतना सुनते ही अंजना खेद-खिन्न हो धरती पर गिर पड़ी, कुमार उसे ढोंग (नाटक) समझकर वहाँ से प्रस्थान कर गये। सेनासहित वे सांयकाल मानसरोवर पर आ पहुँचे।

विद्याबल से एक महल का निर्माणकर कुमार पवन अपने मित्र प्रहस्त सहित उसमें बैठे हुये हैं और झरोखे में से मानसरोवर की सुन्दरता का अवलोकन कर रहे हैं। सरोवर के स्वच्छ जल में कमल खिले हुये हैं, जिसमें हंस एवं चातक पक्षी क्रीड़ा कर रहे हैं, वहीं एक चकवी एवं चकवा भी क्रीड़ा में संलग्न थे, कि तभी सूर्यास्त हो गया और चकवा-चकवी बिछुड़ गये, उसके वियोग से संतप्त चकवी अकेली आकुल-व्याकुल होने लगी। चकवे को देखने के लिये उसके नेत्र अस्ताचल की ओर लगे हुये

थे, वह बारम्बार कमल के छिद्र में उसे शोध रही थी, कमल के रस का स्वाद भी उसे विषतुल्य प्रतीत हो रहा था, पानी में दृष्टिगोचर होने वाले अपने ही प्रतिबिम्ब को अपना प्रीतम समझकर बुला रही थी, परन्तु प्रतिबिम्ब आवे कहाँ से ? इस कारण उसकी (चकवे ही की) अप्राप्ति से अत्यन्त शोकाकुल हो रही थी। सेना के सैनिकों एवं हाथी-घोड़ों के शब्दों को सुनकर अपने पति की आशा से वह अपने चित्त को भ्रमित कर रही थी तथा किनारे पर स्थित वृक्ष पर चढ़कर आकुलतामय भाव से दशों दिशाओं का अवलोकन कर रही थी, किन्तु कहीं भी अपने पति को न देखकर धरती पर आ गिरी।

बहुत समय तक चकवी की ऐसी दशा को पवनकुमार ने ध्यानपूर्वक देखा, चकवी की व्याकुलता को देखकर उनका चित्त दया से आर्त हो गया। उस समय कुमार को अंजना की याद सताने लगी, उनके मन में विचारों के तूफान चलने लगे – "अरे रे ! यह चकवी प्रीतम के वियोग में किस तरह शोकाग्नि में जल रही है, यह मनोहर मानसरोवर एवं चन्द्रमा की चन्दन-सदृश चाँदनी भी इस वियोगिनी को दावानल-सदृश दाहकारक प्रतीत हो रही है। जब यह चकवी अपने पति से एक रात के वियोग को सहन करने में असमर्थ हो रही है, तब वह महासुन्दरी अंजना किस प्रकार बाईस वर्ष से मेरे वियोग को सहन कर रही होगी। उसकी क्या दशा हुई होगी ? अरे ! यह वही तो मानसरोवर है, वही तो यह स्थान है, जहाँ हमारा विवाह हुआ था।" विवाह स्थल पर नजर पड़ते ही कुमार के शोक की अभिवृद्धि हो गयी।

वे सोचने लगे – "हाय ! हाय !! मैं कैसा निष्ठुर चित्त हूँ, मैंने व्यर्थ ही उस निर्दोष का परित्याग कर दिया। कटुवचन तो उसकी दासी ने कहा था, उसने तो कुछ भी नहीं कहा था; तथापि मैंने बिना विचारे दूसरे के दोष से उसका त्याग कर दिया। उस निर्दोष सती को अकारण दुख दिया, इतने वर्षों तक उसे वियोगिनी बनाये रखा। हाय ! अब मैं क्या करूँ ? घर से

तो पिताश्री द्वारा विदा प्राप्त कर निकला हूँ, अब वापस भी किस तरह जा सकता हूँ ! अरे ! बड़े धर्म संकट में फँस गया हूँ। यदि मैं अंजना से मिले बिना संग्राम में जाता हूँ तो निश्चित ही वह मेरे वियोग में प्राण त्याग देगी। उसके अभाव में मेरा अभाव भी सुनिश्चित है। जगत में जीवन के समान कुछ नहीं है, अत: सर्व संदेह का निवारण करने वाले अपने मित्र प्रहस्त से इसका उपाय पूछूँ। वह हर प्रकार से प्रवीण एवं विचारशील है। प्रत्येक कार्य को सोच-विचार कर करने वाला प्राणी निस्संदेह सुख को प्राप्त करता है।''

– इस प्रकार पवनकुमार अन्तर्द्वन्द्वों में गोते खा रहे थे। वहीं कुमार को विचारमग्न देखकर जो कुमार के सुख से सुखी एवं दुख से दुखी हो जाता है – ऐसा मित्र प्रहस्त पूछने लगा – ''हे मित्र ! तुम किस चिन्ता में मग्न हो, तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिये कि तुम महाराज रावण की सहायतार्थ वरुण जैसे योद्धा के सन्मुख युद्ध हेतु जा रहे हो। याद रखो, इस समय प्रसन्नता में ही कार्यसिद्धि निहित है। फिर भी आज तुम्हारे मुख-कमल की मलिनता का क्या कारण है ? संकोच का परित्याग कर मुझे वस्तुस्थिति से अवगत कराओ। तुम्हें चिन्तामग्न देखकर मुझे व्याकुलता हो रही है।''

पवनकुमार ने कहा – ''हे मित्र ! बात ही कुछ ऐसी है, जो किसी से कही नहीं जा सकती। यद्यपि मेरे हृदय की समस्त वार्ता कहने का एकमात्र स्थान तुम्हीं हो, तुममें और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है, तथापि यह बात कहते हुये मैं संकोच का अनुभव कर रहा हूँ।''

प्रहस्त कहने लगा – ''हे कुमार ! जो तुम्हारे चित्त में हो वह कहो, जो कुछ तुम मुझसे कहोगे वह बात सदैव गोपनीय रहेगी – यह मेरा वचन है। जैसे गर्म लोहे पर गिरा हुआ जल-बिन्दु शीघ्र ही विलय को प्राप्त हो जाने से दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार मुझसे कही हुई तुम्हारी बात प्रगट नहीं होगी।''

तब कुमार कहने लगा – "हे मित्र ! सुनो – मैंने कभी भी अंजना के साथ प्रीति नहीं की, इस कारण आज मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है। हमारा विवाह हुये बाईस वर्ष व्यतीत होने पर भी उसे आज तक मेरा वियोग रहा है, वह नित्य ही शोकाकुल हो अश्रुपात करती है। यहाँ आने के समय जब वह दरवाजे पर खड़ी थी, तब वियोगावस्था में दुखित उसका चेहरा मैंने देखा था, वह दृश्य अभी भी मेरे मानस-पटल पर बाण की भांति चुभ रहा है। अतः हे मित्र ! वह प्रयत्न करो, जिससे हमारा सम्मिलन संभव हो सके, अन्यथा हम दोनों का मरण सुनिश्चित है।"

कुछ देर विचार कर प्रहस्त बोला – "हे मित्र ! तुम माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर युद्ध में शत्रु को परास्त करने निकले हो, अतः वहाँ वापस जाना तो अनुचित है ही और अंजना को यहाँ बुलाना भी उचित नहीं है, क्योंकि तुम्हारा व्यवहार आज तक उसके प्रति निराशाजनक रहा है – ऐसी स्थिति में तो यही संभव है कि तुम गुप्तरूप से वहाँ जाओ और उसका अवलोकन करके सुख-संभाषण कर आनन्दपूर्वक प्रातःकाल होने के पूर्व ही वापस यहाँ आ जाओ – ऐसा करने से तुम्हारा चित्त शान्त होगा, परिणामस्वरूप तुम शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकोगे।"

इस प्रकार निश्चय करके सेना की रक्षा का भार सेनापति के सुपुर्द कर दोनों मित्र मेरु-वंदना के बहाने आकाशमार्ग से अंजना के महल की तरफ प्रस्थान कर गये। उस समय कुछ रात्रि व्यतीत हो गयी थी, अंजना के महल में दीपक का प्रकाश टिमटिमा रहा था, पवनकुमार के शुभागमन का शुभ समाचार देने हेतु कुमार को बाहर ही छोड़कर प्रहस्त भीतर गया और उसने दरवाजा खटखटाया।

आहट पाकर अंजना ने पूछा – 'कौन है ?' और नजदीक ही शयन कर रही सखी वसन्तमाला को जगाया; तब सर्व बातों में निपुण वसन्तमाला अंजना के भय को निवारण करने को उद्यत हुई तथा दरवाजा खोला।

जब प्रहस्त ने नमस्कार करके पवनकुमार के शुभागमन का समाचार अंजना को सुनाया तो वह सहसा इस बात पर विश्वास न कर सकी और यह समाचार उसे स्वप्नवत् ज्ञात हुआ।

गद्‌गद् वाणी द्वारा वह प्रहस्त से कहने लगी – "हे प्रहस्त ! मैं पुण्यहीन पतिकृपाविहीन हूँ, तुम क्यों मेरा अपमान कर रहे हो, मैं तो पहले ही पापोदय की सताई हुई हूँ, पर अरे रे ! पति द्वारा ही जिसका सम्मान न हो, उसकी अवज्ञा भला कौन नहीं करेगा ? हाय ! मुझ अभागिन को वह सुखद दिन कब प्राप्त होगा ? कब मुझे अपने प्राणेश्वर के दर्शन होंगे ?"

प्रहस्त ने करबद्ध हो निवेदन किया – "हे कल्याण रूपिणी ! हे पतिव्रता !! मेरा अपराध क्षमा करें। अब आपके अशुभ कर्मोदय का समापन हो गया है। आपके निश्चल प्रेम से प्रेरित हो आपके प्राणनाथ यहाँ पधारे हैं। वे आपसे अत्यन्त लज्जित हैं तथा प्रसन्न भी हैं, उनकी प्रसन्नता से आनंद न हो – यह असंभव है।"

यह बात सुनकर अंजना ने अपनी नजरें झुका लीं, तब वसन्तमाला ने प्रहस्त से कहा – "हे भद्र ! मेघ तो जब बरसे तभी श्रेष्ठ हैं। कुमार इनके महल में पधारे हैं – यह इनका महाभाग्य है, हमारा भी पुण्यरूप वृक्ष विकसित होकर फला है।"

अन्दर इस प्रकार चर्चा चल रही थी कि तभी कुमार भी वहीं आ पहुँचे। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु छलक रहे थे, मानो करुणारूपी सखी ही उन्हें यहाँ ले आयी थी।

पति को देखते ही अंजना ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उनके चरणस्पर्श किये, तब कुमार ने उसे अपने हाथों से उठाकर इस प्रकार सम्बोधित किया – "हे देवी ! अब सर्व क्लेश एवं दुखों का परित्याग कर दो।" – ऐसा कहकर उन्होंने उसे अपने निकट बैठाया, तब प्रहस्त और वसन्तमाला बाहर चले गये।

अपनी भूल के कारण लज्जित पवनकुमार ने बारम्बार अंजना सुन्दरी से कुशल समाचार पूछे और कहा – "हे प्रिय ! मैंने व्यर्थ ही तुम्हारा अनादर किया, इसके लिये तुम मुझे क्षमा करो। मैंने अन्यकृत अपराध का तुम पर दोषारोपण किया अब इन बातों का विस्मरण करो। अपने अपराध की क्षमा प्राप्ति हेतु मैं बारम्बार तुमसे याचना करता हूँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।" – ऐसा कहते हुये पवनकुमार ने उसके प्रति बहुत स्नेह प्रदर्शित किया।

अपने प्राणनाथ का अपूर्व स्नेह देखकर महासती अंजना अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक कहने लगी – "हे नाथ ! मेरे प्रति इस तरह अनुनय-विनय करना आपके लिये अनुचित है। मेरा हृदय तो सदैव आपके ध्यान से संयुक्त ही था, आप तो सदा से ही मेरे हृदय में विराजमान थे। आपके द्वारा प्रदत्त अनादर भी मुझे आदरवत् ही प्रतीत होता था। अब तो आपने मुझ पर अपार कृपा कर अत्याधिक स्नेह प्रदर्शित किया – इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है, मेरे तो सारे ही मनोरथ सिद्ध हो गये हैं। इस प्रकार दोनों में परस्पर स्नेहपूर्वक वार्तालाप एवं समागम के साथ रात्रि व्यतीत हुई।

प्रात:काल होने के कुछ समय पूर्व ही प्रहस्त ने आकर कुमार से कहा – "हे मित्र ! अब चलने में शीघ्रता करो। अपनी प्राणप्रिया का विशेष सम्मान वापस आकर करना, अभी तो गुप्तरूप से ही वापस सेना में पहुँचना है। मानसरोवर पर अन्य राजागण आदि सभी साथ चलने के लिये तुम्हारा इन्तजार कर रहे होंगे। इतना ही नहीं, स्वयं महाराज रावण भी अपने मंत्रियों से तुम्हारे आगमन के विषय में जानकारी प्राप्त करते रहते हैं। अत: अब विलम्ब करना किसी भी तरह उचित नहीं, आप शीघ्र ही अपनी प्राणप्रिया से विदा लेकर आओ।"

इतना कहकर प्रहस्त तो वापस बाहर चला गया। तब अंजना से विदा माँगते हुये पवनंजय ने कहा – "हे प्रिये ! अब मैं जा रहा हूँ, तुम चिन्ता मत करना, कुछ दिनों पश्चात् ही मैं वापस आ जाऊँगा, तब तक सानन्द रहना।"

तब सती अंजना संकोचपूर्वक हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी – "हे प्राणनाथ ! अभी मेरा ऋतु समय है, अत: आपके समागम से मेरा गर्भधारण करना अवश्यम्भावी है। यह तो सभी को ज्ञात है कि आज तक मुझपर आपकी कृपादृष्टि नहीं रही, अत: मेरे हित के लिये आप माता-पिता से अपने आने का वृत्तान्त अवश्य कहते जायें।"

पवनकुमार ने कहा – "हे प्रिये ! माता-पिता से तो मैं आज्ञा प्राप्त कर निकला हूँ, अत: अब उनके समीप जाकर यह बात कहते हुये मुझे लज्जा आती है। समस्त लोकजन भी मेरी इस चेष्टा को जान कर हँसी ही करेंगे, किन्तु तुम विश्वास रखो, तुम्हारे गर्भ के चिन्ह प्रगट हों, उससे पूर्व ही मैं वापस आ जाऊँगा, अत: तुम अपने चित्त को प्रसन्न रखना। फिर भी यदि कोई पूछे तो मेरे आगमन की प्रतीकरूप यह मेरे नाम की मुद्रिका एवं हाथ के कड़े रखो, आवश्यकता पड़ने पर ये मेरे आगमन की साक्षी देंगे और तुम्हें भी शान्ति रहेगी" – इस प्रकार मुद्रिका एवं कड़े अंजना को सौंपकर कुमार ने विदा ली और जाते-जाते वसन्तमाला को अंजना की भले प्रकार सेवा करने की आज्ञा दी।

यहाँ से निकलकर दोनों मित्र आकाशमार्ग से विमान द्वारा मानसरोवर पर आ पहुँचे।

इस घटना के रहस्य का परिज्ञान कराते हुये गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहते हैं – "हे श्रेणिक ! इस लोक में कभी उत्तम वस्तु के संयोग से किंचित् सुख का प्रतिभास होता है वह भी क्षणभंगुर है और देहधारियों को पापोदय से होने वाला दुख भी क्षणभंगुर है – इस प्रकार संयोगजन्य सुख-दुख दोनों ही क्षणभंगुर हैं, अत: इनमें हर्ष-विषाद का त्याग करना चाहिये।

हे प्राणियो ! "यह जिनधर्म ही जीवों को वास्तविक सुख का प्रदाता एवं दुख रूप अन्धकार का नाशक है, अत: जिनधर्म रूपी सूर्य के प्रताप से मोहरूपी अन्धकार का नाश करो।"

समय पाकर सती अंजना के गर्भ के लक्षण प्रगट होने लगे, उसका मुख इस तरह श्वेत हो गया, मानो गर्भ में स्थित हनुमान के उज्ज्वल यश को ही प्रगट कर रहा हो। ऐसे लक्षणों द्वारा सती अंजना को गर्भवती जानकर उसकी सास केतुमति पूछने लगी –

"अरी अंजना ! यह पाप कार्य तूने किसके साथ किया है ?"

अंजना ने अत्यन्त विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पति-आगमन का सम्पूर्ण वृत्तान्त अपनी सास को सुना दिया, किन्तु निष्ठुर हृदयी केतुमति को उस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। अत: वह बिना विचारे ही क्रोधावेश में आकर कर्कशवचन कहने लगी –

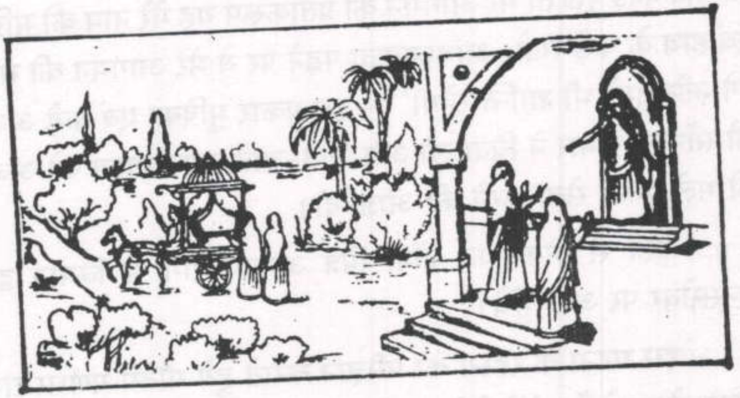

"रे पापिनी ! मेरा पुत्र तो तुझसे इतना विरक्त था कि तेरी छाया तक नहीं देखना चाहता था, तेरी बात तक सुनना उसे पसंद न था, फिर वह तो हमसे आज्ञा प्राप्त कर रण-संग्राम में गया है, वह तेरे महल में कैसे आ गया ? रे निर्लज्ज ! तुझ पापिन को धिक्कार है। निंद्य-कर्म करके तूने हमारे उज्ज्वल वंश में कलंक लगा दिया है। क्या तेरी इस सखी वसंतमाला ने तुझे यही बुद्धि सुझायी है।"

सास की क्रूरतापूर्ण बातों को सुनकर अंजना ने कुमार द्वारा निशानी के रूप में प्रदान किये गये कड़े एवं मुद्रिका उन्हें दिखाई, तथापि

उसकी सास के संदेह का निवारण न हुआ और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसने एक सेवक को आदेश दिया – ''जाओ ! इस दुष्टा को इसकी सखी सहित रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर के समीप छोड़ आओ।''

क्रूर केतुमति की आज्ञा पाकर सेवक ने उसका अनुसरण किया और दोनों को रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर की ओर प्रस्थान करा दिया। उस समय भयाक्रान्त हो अंजना का सारा शरीर काँप रहा था, भय के कारण वह अपनी सास से और कुछ भी न कह सकी। उसकी दशा तो प्रचण्ड पवन के वेग से उखड़ी हुयी बेल की भांति एकदम निराश्रय हो गयी थी। वह बारम्बार अपने अशुभ कर्मोदय की निन्दा करती थी, उसका चित्त अत्यन्त अशान्त था।

शाम होते-होते रथ महेन्द्रनगर के समीप पहुँच गया। तब सेवक ने अंजना से कहा – ''हे देवी ! माताजी ने आपको यहाँ तक ही छोड़ने की आज्ञा दी है, उन्हीं की आज्ञा से यह दुखरूप कार्य मुझे करना पड़ रहा है। मुझे क्षमा कर दें।'' – ऐसा कहकर वह सेवक वापस महेन्द्र नगर की ओर बढ़ गया।

महापवित्र पतिव्रता अंजना सुन्दरी को अत्यन्त दुखी देखकर सूर्य भी मन्द पड़कर अस्त हो गया। रो-रोकर अंजना की आँखें लाल हो जाने से मानो पश्चिम दिशा भी लाल रंग में रंग गयी। धीरे-धीरे रात्रि हुई और चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो गया। वन्य पशु-पक्षी भी मानो अंजना के दुख से दुखित हो कोलाहल करने लगे।

अपमानरूप महादुखसागर में डूबी अंजना भूख-प्यास आदि सब भूल गयी। भयभीत हो रुदन करने लगी, अंजना की इस दुखित अवस्था से द्रवित हो वसन्तमाला उसे धैर्य दिलाती हुई कहने लगी – ''हे बहिन ! तुम धैर्य धारण करो। तुम तो आत्मज्ञानी हो देव-गुरु-धर्म की परम भक्त हो, पवित्रात्मा हो, पतिव्रता हो, तुम्हारे ऊपर यह संकट मुझसे नहीं देखा

जाता। हे सखी ! तू धैर्य रख, हिम्मत रख, अल्पकाल में ही तेरे दुखों का अन्त होगा, धर्मात्मा जीव पर दीर्घकालीन संकट नहीं रह सकता'' – इस प्रकार धैर्य बँधाकर अंजना को सुलाने का प्रयास करने लगी, किन्तु उसकी आँखों में रंचमात्र भी निद्रा न थी, उसे एक रात्रि भी एक वर्ष के सदृश लगी।

वसंतमाला कभी उसे धैर्य दिलाती, कभी पैर दबाती – इस प्रकार जिस-तिस प्रकार उन्होंने रात्रि व्यतीत की।

प्रात:काल हो गया था, पक्षी चहुँओर कोलाहल करने लगे थे, सूर्यदेव उदित होने की तैयारी में थे। यहाँ दोनों सखियों ने सर्वप्रथम पंचपरमेष्ठी भगवंतों का स्मरण किया। तत्पश्चात् विह्वलता पूर्वक अंजना सुन्दरी ने अपने पिता राजा महेन्द्र के महल की तरफ प्रस्थान किया, वसन्तमाला ने भी छाया की तरह अंजना का अनुसरण किया।

राजमहल के दरवाजे पर पहुँचकर जब दोनों ने अंदर प्रवेश करना चाहा तो द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया, क्योंकि दुख के कारण अंजना का रूप ऐसा हो गया था कि द्वारपाल भी उसे पहिचानने में असमर्थ रहा।

रे संसार ! जो कभी राजकुमारी के रूप में उस महल में उछलकूद करती थी, आज वही उसी महल में जाने पर द्वारपाल द्वारा रोकी गयी। अरे रे ! संसार में पुण्य-पाप का चक्र ऐसा ही चलता है।

जब वसंतमाला ने द्वारपाल को सम्पूर्ण वस्तुस्थिति से अवगत कराया, तब वह दरवाजे पर अन्य व्यक्ति को खड़ा करके स्वयं अंदर गया और राजा महेन्द्र को अंजना के आगमन का समाचार दिया, उसे सुनकर राजा महेन्द्र ने अपने पुत्र प्रसन्नकीर्ति को आदेश दिया कि "तुम शीघ्र अंजना के सन्मुख जाओ और शीघ्र ही उसके नगर प्रवेश की तैयारी कराओ, नगर को सजाओ, मैं अभी आता हूँ।"

राजा की ऐसी आज्ञा सुनकर द्वारपाल ने हाथ जोड़कर कहा – "हे महाराज ! कुमारीजी अकेली ही पधारी हैं, उनके साथ सखी वसंतमाला के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है और किसी प्रकार का ठाट-बाट भी नहीं है, उनकी सास ने उन पर कलंक लगाकर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया है, वे यहाँ बाहर द्वार पर खड़ी हैं एवं भीतर आने हेतु आपकी अनुमति चाहती हैं।"

तब पुत्री पर लगे कलंक की बात सुनकर राजा महेन्द्र को लज्जा आई और क्रोधित हो अपने पुत्र को आदेश दिया – "उस पापिनी को शीघ्र ही नगर से बाहर कर दो, उसकी बात सुनते हुए भी मेरे कान फटे जा रहे हैं।"

राजा महेन्द्र की क्रोधपूर्ण आज्ञा को सुनकर उनका अत्यन्त प्रिय सामन्त मनोत्साह आकर कहने लगा – "हे नाथ ! वसन्तमाला से सम्पूर्ण वस्तुस्थिति ज्ञात किये बिना यह आज्ञा देना उचित नहीं है। अपनी अंजना उत्तम संस्कारों से संयुक्त एवं धर्मात्मा है, जबकि उसकी सास केतुमति अत्यन्त क्रूर है; इतना ही नहीं, वह तो जैनधर्म से परांगमुख एवं नास्तिकमत में प्रवीण है – यही कारण है कि उसने बिना विचारे अंजना पर दोषारोपण किया है। अंजना तो जैनधर्म की ज्ञाता होने के साथ ही श्रावक के व्रतों

की धारक है – धर्माचरण में सदैव तत्पर रहती है। उसकी सास ने तो उसे निष्कासित कर ही दिया, अब यदि आप भी उसे शरण प्रदान नहीं करेंगे तो वह किसकी शरण अंगीकार करेगी।''

जिस तरह सिंह से भयभीत हिरण गहन वन की शरण ग्रहण करता है, उसी प्रकार सास द्वारा प्रताड़ित यह भोली-भाली निष्कपट अंजना आपकी शरण में आयी है, अभी तो वह दुखी एवं विह्वल हो रही है। अपमान रूप आताप से उसका अन्तःस्थल संतप्त है। इस समय भी यदि वह आपके आश्रित रहकर शान्ति प्राप्त नहीं करेगी तो कहाँ शान्ति प्राप्त करेगी ? द्वारपाल द्वारा रोके जाने के कारण वह अत्यन्त लज्जित होकर राजद्वार पर मुँह ढँककर खड़ी-खड़ी बिलख रही है। आपके स्नेह के कारण वह सदा आपकी लाड़ली रही है और केतुमति की क्रूरता तो जगतप्रसिद्ध है, अतः हे राजन् ! आप दया करके शीघ्र ही निर्दोष अंजना का महल में प्रवेश कराइये।''

इस प्रकार मनोत्साह सामंत ने अनेक प्रकार के न्यायपूर्ण वचन कहे, पर राजा ने उन पर किंचित् भी ध्यान नहीं दिया। जैसे कमल पत्र पर पानी नहीं ठहरता, उसी प्रकार राजा महेन्द्र के हृदय पर इन न्यायपूर्ण वचनों का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।

राजा महेन्द्र ने सामन्त से पुनः कहा – ''हे सामंत ! इसकी सखी वसन्तमाला तो सदा से ही इसके साथ रहती आयी है, अतः कदाचित् अंजना के स्नेहवश वह सत्य बात नहीं कह सकती, तब अपने को यथार्थता का परिज्ञान किस प्रकार संभव है ? अंजना का सतीत्व संदेहास्पद स्थिति में है, अतः उसे शीघ्र ही नगर के बाहर कर दो। यदि यह बात प्रगट हो गयी तो हमारे उज्ज्वल कुल में कलंक लग जायेगा। यह बात मैं पूर्व में भी अनेक बार सुन चुका हूँ कि वह सदा ही अपने पति की कृपाविहीन रही है। जब वह उसकी ओर देखता तक नहीं था, तब उससे गर्भोत्पत्ति किस प्रकार संभव है ? अतः निश्चित ही अंजना दोषी है, उसे मेरे राज्य

में जो भी शरण देगा, वह मेरा शत्रु है।'' – इस प्रकार कहकर राजा ने अंजना को अपने राज-द्वार से बाहर करवा दिया।

सखी सहित दुख में सन्तप्त अंजना अपने रिश्तेदारों के यहाँ जहाँ-जहाँ भी शरण प्राप्त करने पहुँची, वहाँ-वहाँ से उसे असफलता ही प्राप्त हुई। यद्यपि सबके मन में उसके प्रति दयारूप भाव थे, तथापि राजाज्ञा के भय से सबने अपने-अपने दरवाजे बन्द कर लिये। वह विचारने लगी – ''अरे रे ! जहाँ पिता ने ही मुझे क्रोधित हो तिरस्कृत कर दिया, वहाँ अन्य की तो बात ही क्या ? ये सब तो राजा के अधीन हैं'' – इस प्रकार सबके प्रति उदासीन होकर अंजना अपनी प्रिय सखी से कहने लगी –

''हे सखी ! यहाँ अपना कोई नहीं है। अपने वास्तविक माता-पिता एवं रक्षक तो देव, गुरु और धर्म ही हैं, सदा उन्हीं का शरण है। यहाँ तो सब ही पाषाणचित्त हैं, यहाँ अपना वास संभव नहीं है ? चलो ! अब तो हम वन में ही चलें, जहाँ वीतरागी संतों का वास है – ऐसे वन में आत्मसाधनार्थ निवास करेंगे।

चलो सखी अब वहाँ चलें, जहाँ मुनियों का वास।
आतम का अनुभव करें, वन में करें निवास।।

वनवासी अंजना –

इस प्रकार विचारकर अंजना ने अपनी सखी सहित वन की तरफ प्रस्थान कर दिया, जब वह कंकड़-पत्थरों पर चलते-चलते थक गयी तो वहीं बैठकर रुदन करने लगी – ''हाय ! हाय !! मैं मन्दभाग्यनी पूर्व पापोदय के कारण महाकष्ट को प्राप्त हुई हूँ, क्या करूँ ? किसकी शरण में जाऊँ ? कौन करेगा मेरी रक्षा ? अरे ! माता ने भी मेरी रक्षा नहीं की, वह करती तब भी क्या करती ? वह भी तो अपने पति के आधीन है। पिताजी की तो मैं सदा से ही लाड़ली रही हूँ, वे तो मुझे प्यार से अपनी गोद में बिठाते थे, उन्होंने भी बिना परीक्षा के ही मेरा निरादर कर दिया। अरे ! जिस माता ने नौ माह तक मुझे अपने गर्भ में धारण किया, मेरा

परिपालन किया वह भी मुझे आश्रय न दे सकी, न यह कह सकी कि इसके गुण-दोष का निर्णय तो करो। अरे ! मेरे माता-पिता की ही यह स्थिति है, तब दूर के काका, नाना, प्रधान, सामंत एवं प्रजाजन तो कर ही क्या सकते हैं ? इसमें दूसरों का दोष भी क्या है ? मैं ही वर्तमान में दुर्भाग्यरूपी समुद्र में गिरी हुई हूँ। कौन जाने किन अशुभ कर्मोदय के कारण प्राणनाथ पधारे एवं यह दुर्दशा हुई। अरे ! प्राणनाथ जाते-जाते भी कह गये थे कि तुम्हारे गर्भ के चिन्ह प्रगट होने के पूर्व ही मैं पहुँच जाऊँगा। हे नाथ ! दयावान होकर भी आपने इस वचन को क्यों नहीं निभाया ? अरे ! सास ने भी बिना परीक्षा किये ही क्यों मेरा त्याग कर दिया, जिसके शील में संदेह हो उसकी परीक्षा के भी तो अनेक उपाय होते हैं। अरे ! जब मेरा पापोदय ही ऐसा है, तब कौन शरण हो सकता है ?''

इस प्रकार अंजना विलाप करने लगी, उसका विलाप सखी से देखा न जा सका, वह भी धैर्य खो बैठी और रोने लगी – दोनों सखियों के करुण क्रन्दन को सुनकर उनके आस-पास स्थित हिरणियाँ भी आँसू बहाने लगी। इसी दशा में बहुत समय व्यतीत हो गया, तब महा विचक्षण वसंतमाला अंजना को हृदय से लगाकर कहने लगी – ''हे सखी ! तुम शान्त हो जाओ। अधिक विलाप से क्या कार्यसिद्धि होने वाली है। तुम तो जानती हो कि इस संसार में कोई भी पदार्थ इस जीव के लिये शरण प्रदाता नहीं है, माता-पिता भी शरण नहीं हैं।''

सर्वज्ञ वीतराग देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु ही सच्चे माता-पिता

हैं और तुम्हारा निर्मल सम्यग्दर्शन ही तुम्हें शरणरूप है। वही तुम्हारा वास्तविक रक्षक एवं वही इस असार-संसार में एकमात्र सारभूत है। अत: हे सखी ! इस तत्त्वज्ञान के चिन्तवन से अपने चित्त को शान्त करो। पूर्वोपार्जित कर्मों के उदयानुसार संयोग-वियोग की दशायें तो बनती ही रहती हैं, उसमें हर्ष-शोक क्या करना ? स्वर्ग की अप्सरायें जिसे निरखती हैं – ऐसा स्वर्ग का देव भी पुण्य समाप्त होने पर दुख प्राप्त करता है। जीव सोचता कुछ है और होता कुछ है, संयोग-वियोग में जीव का कुछ भी अधिकार नहीं है।

जगत के जीव अपने अभिप्रायानुसार पदार्थों के संयोग-वियोग के लिये प्रयत्नशील होते हैं, पर वस्तुतः संयोग-वियोग का कारण तो पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मोदय ही है। प्रियवस्तु का संयोग भी अशुभकर्मोदय के कारण वियोगरूप परिणमित हो जाता है और जिसकी कभी कल्पना भी न की हो – ऐसी वस्तु का संयोग शुभ कर्मोदय के फलानुसार सहज ही प्राप्त हो जाता है – यह सब तो कर्मोदय की विचित्रता है। तुम्हारे द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मोदयानुसार प्राप्त संयोग-वियोग तुम्हारे टालने से नहीं टलेंगे, अत: हे सखी ! तू वृथा क्लेश न कर, खेद का परित्याग करके अपने मन को धैर्य से दृढ़ कर। तुम स्वयं विज्ञ हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊँ ? क्या तुम स्वयं नहीं जानती, जो मैं तुम्हें समझा रही हूँ।''

इस प्रकार वसंतमाला ने अत्यन्त स्नेह से अंजना को दिलासा दिलाते हुये उसके आँसू पोंछे और उसके शान्त होने पर वह फिर उससे कहने लगी –

''हे देवी ! यह स्थान आश्रय रहित है, अत: यहाँ से चलें, उठो आगे चलते हैं। यदि समीप ही स्थित पहाड़ में जीव-जन्तुओं रहित कोई गुफा हो तो उसकी खोज करते हैं। तुम्हारे प्रसूति का समय अत्यन्त निकट है, अत: कुछ दिन अत्यन्त सावधानीपूर्वक रहना जरूरी है।''

सखी के आग्रह से अंजना कष्टपूर्वक उसके साथ चलने लगी। वह

महा-वन हाथी और चीतों से भरा हुआ था, सिंह की गर्जना एवं अजगर की फुंकार से महाभंयकर प्रतीत होता था – ऐसे मातंग मालिनी नामक घोर वन में अंजना अपनी सखी के साथ धीमे-धीमे पैर रखती हुई बढ़ी जा रही थी।

यद्यपि वसंतमाला आकाशमार्ग से गमन करने में समर्थ थी, तथापि गर्भ-भार के कारण अंजना के चलने में असमर्थ होने से वह भी अंजना के प्रेम में बँधी उसकी छाया के समान उसके साथ-साथ ही चल रही थी।

वन की भयानकता का अवलोकन कर अंजना काँप रही थी, भ्रमित हो रही थी, तब वसंतमाला उसका हाथ पकड़कर कहने लगी – ''अरे मेरी बहन ! तू डर मत, मेरे साथ चली आ।''

तब अंजना सखी के कंधे पर हाथ रखकर उसके साथ-साथ चल पड़ती। पैरों में ककड़ एवं काँटे लग जाने के कारण खेदखिन्न हो विलाप करने लगती और बड़ी कठिनता से देह भी संभाले रखती, मार्ग में समागत पानी के झरनों को बड़ी कठिनाई से लांघती, बारम्बार विश्राम लेती, बारम्बार सखी धैर्य बँधाती।

इस प्रकार जैसे-तैसे दोनों सखियाँ पर्वत के समीप आ पहुँची। गुफा यद्यपि पास ही थी, पर अंजना तो वहाँ तक पहुँचने में भी असमर्थ थी, अत: आँसू बहाते हुये वहीं बैठ गयी और सखी से कहने लगी – ''हे सखी ! मैं तो अब थक गयी हूँ, एक कदम भी चलने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ। मैं तो यहीं बैठी रहूँगी, भले ही मरण हो जाये।''

तब अत्यन्त चतुर वसंतमाला हाथ जोड़कर अत्यन्त मधुर स्वर में शान्तिप्रदायक वचनों से इस प्रकार कहने लगी – ''हे सखी ! देखो! अब गुफा नजदीक ही है, अत: कृपाकर यहाँ से उठो और वहाँ गुफा में निवास करो। यहाँ क्रूर जीवों का विचरण अत्यधिक मात्रा में है, अत: गर्भ की रक्षार्थ हठ का परित्याग करो।''

सखी के वचन सुनकर एवं वन की भयंकरता से भयभीत अंजना अत्यन्त कष्टपूर्वक चलने के लिये उद्यमवंत हुई और सखी के हाथ का सहारा पाकर दोनों गुफा के द्वार तक पहुँच गईं।

बिना विचारे गुफा में प्रवेश करने से दोनों को ही भय पैदा होने लगा। इस कारण वे बाहर ही बैठ गईं और ध्यानपूर्वक गुफा के भीतरी दृश्य का अवलोकन करने लगीं।

गुफा के भीतरी दृश्य पर उन की दृष्टि पड़ते ही उनके आनन्द का पार न रहा। उन्होंने देखा कि अहो ! गुफा में एक मुनिराज ध्यान-निमग्न हैं, वे मुनि चारणऋद्धि के धारक थे, उनका शरीर एकदम निश्चल था, उनकी मुद्रा सागरसम गंभीर एवं परमशान्त थी, आँखें नासाग्र थी। आत्मा का जो स्वरूप जिनागम में प्रतिपादित किया गया है, उसी के ध्यान में मुनि तल्लीन थे, वे पर्वत-सम अडोल, आकाश-सम निर्मल एवं पवन की भांति निसंग थे। अहो ! अप्रमत्त दशा में झूलते हुये वे मुनिराज सिद्धसमान निजात्मा की साधना में मग्न थे।

ऐसे धीर, वीर, गंभीर, मुनिराज को देखते ही दोनों के हर्ष का पार ना रहा। अहा ! धन्य-धन्य मुनिराज !! – इस प्रकार कहती हुई वे दोनों मुनिवर के समीप पहुँचीं और उनकी परमशान्त मुद्रा के दर्शनों को प्राप्त कर अपने सम्पूर्ण दुखों को भूल गईं। उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर तीन

प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को नमस्कार किया, मुनिराज जैसे परम बांधव के दर्शन से उनके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। आँसू रुक गये और नजरें मुनिराज के चरणों में ही स्थिर हो गईं – वे दोनों हाथ जोड़कर महाविनयपूर्वक इस प्रकार मुनिराज की स्तुति करने लगीं।

हे भगवन ! हे कल्याणरूप ! हे उत्तमध्यान के धारक ! हे नाथ ! आप जैसे संत तो समस्त जीवों की कुशलता के कारण हैं, अत: आपकी कुशलता के बारे में क्या पूछना ? हे नाथ ! आप तो संसार का परित्याग कर आत्महित की साधना में मग्न हैं, आप महापराक्रमी, महाक्षमावान हैं, परमशान्ति के धारक हैं, उपशांतरस में झूलने वाले हैं, मन और इन्द्रियों के विजेता हैं, आपका समागम जीवों के कल्याण का कारण है।

– इस प्रकार अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति करके दोनों वहीं बैठ गयीं, मुनिवर के दर्शनों से दोनों का सम्पूर्ण कष्ट दूर हो गया।

मुनिराज का ध्यान पूर्ण होने पर दोनों ने पुन: उन्हें नमस्कार किया, तब स्वयमेव मुनिराज परमशान्त अमृत वचन कहने लगे –

"हे कल्याणरूपिणी ! रत्नत्रय धर्म के प्रसाद से हमें पूर्ण कुशलता है। हे पुत्री ! सभी जीवों को अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के उदयानुसार संयोग-वियोग प्राप्त होते हैं। देखो कर्मों की विचित्रता ! यह राजा महेन्द्र की पुत्री अपराधरहित होने पर भी परिजनों द्वारा तिरस्कृत की गयी है।"

बिना कहे ही सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लेने वाले उन धीर-वीर-गंभीर मुनिराज से वसंतमाला ने पूछा – "हे नाथ ! क्या कारण है कि इसके पति इतने वर्षों इससे उदास रहे और तत्पश्चात् इसमें अनुरक्त हुये ? और किस कारण से यह महासती वन में दुख को प्राप्त कर रही है तथा इसके गर्भ में कौन भाग्यहीन जीव स्थित है, जिसके जीवन के प्रति भी संदेह है। हे प्रभो ! कृपाकर इन प्रश्नों का उत्तर प्रदान कर मेरे संदेह का निवारण करें।"

वसंतमाला के प्रश्नों के प्रत्युत्तर स्वरूप अतुलज्ञान के धारक

मुनिराज अमितगति सर्व यथार्थ वृत्तान्त कहने लगे; क्योंकि महापुरुष तो सहज ही परोपकारी होते हैं, अतः मुनिराज ने मधुरवाणी से कहा –

"हे पुत्री ! अंजना के गर्भ में स्थित जीव महापुरुष है। सर्वप्रथम तुम्हें उसी (हनुमान) के पूर्वभवों का ज्ञान कराता हूँ। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तत्पश्चात् अंजना पूर्वभव के जिस पापाचरण के फलस्वरूप वर्तमान में दुखावस्था को प्राप्त हुई है – उसका वृत्तान्त कहूँगा।"

हनुमान के पूर्वभवों का वृत्तान्त–

"जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मंदिरनगर में प्रियनन्दी नामक एक गृहस्थ था, उसके दमयन्त नामक एक पुत्र था। एक बार वह वसंतऋतु में अपने मित्रों के साथ वनक्रीड़ा के लिये वन में गया, वहाँ उसने एक मुनिराज को देखा जिनका आकाश ही वस्त्र था, तप ही धन था और वे निरंतर ध्यान एवं स्वाध्याय में उद्यमवंत थे – ऐसे परम वीतरागी मुनिराज को देखते ही दमयन्त अपनी मित्र मण्डली को छोड़कर श्री मुनिराज के समीप पहुँच गया, मुनिराज को नमस्कार कर उनसे धर्मश्रवण करने लगा। मुनिराज के तत्त्वोपदेश से उसने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की और श्रावक के व्रत एवं अनेक प्रकार के नियमों से सुशोभित हो घर आया।"

तत्पश्चात् एक बार उस कुमार ने दाता के सात गुण सहित मुनिराज को नवधाभक्तिपूर्वक आहार दान दिया और अन्त समय में समाधिमरण पूर्वक देह का परित्याग कर देवगति को प्राप्त हुआ।

स्वर्ग की आयु पूर्णकर वह जम्बूद्वीप के मृगांक नगर में हरिचन्द्र राजा की प्रियंगुलक्ष्मी रानी के गर्भ से सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ। वहाँ भी संतों की सेवा पूर्वक समाधिमरण ग्रहण कर स्वर्ग गया।

वहाँ से आयु पूर्ण कर भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत पर अहनपुर नगर में सुकंठराजा की कनकोदरी रानी के यहाँ सिंहवाहन नामक पुत्र हुआ जो महागुणवान एवं रूपवान था, उसने बहुत वर्षों तक राज्य किया, तत्पश्चात् विमलनाथ स्वामी के समवशरण में आत्मज्ञान पूर्वक संसार से

वैराग्य उत्पन्न होने पर राज्य का भार अपने पुत्र लक्ष्मीवाहन को सौंपकर लक्ष्मीतिलक मुनिराज के शिष्यत्व को अंगीकार कर लिया अर्थात् वीतराग देव कथित मुनिधर्म अंगीकार कर लिया और अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करके ज्ञानचेतना रूप हो गया, उसने महान तप किया और निज स्वभाव में एकाग्रता के बल पर उस स्वभाव में ही स्थिरता की अभिवृद्धि का प्रयत्न करने लगा। तप के प्रभाव से उसे अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गयीं, उसके शरीर से स्पर्शित पवन भी जीवों के अनेक रोगों को हर लेती थी। अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न वे मुनीश्वर निर्जरा के हेतु बाईस प्रकार के परीषहों को सहन करते। इस प्रकार अपनी आयु पूर्ण कर वे मुनिराज ज्योतिष्चक्र का उल्लंघन कर लांतव नामक सप्तम स्वर्ग में महान ऋद्धि से सुसम्पन्न देव हुये। देवगति में वैक्रियक शरीर होता है, अत: मनवांछित रूप बनाकर इच्छित स्थानों पर गमन सहज ही होता था। साथ ही स्वर्ग का अपार वैभव होने पर भी उस देव को तो मोक्षपद की ही भावना प्रवर्तती थी, अत: वह स्वर्ग सुख में 'जल तैं भिन्न कमलवत्' निवास करता था।

हे पुत्री ! वही देव स्वर्ग से चयकर अंजना के गर्भ में आया है, वह

चरम शरीरी है, अतः अब पुनः देह धारण नहीं करेगा, परम सुखरूप मोक्षदशा को प्राप्त करेगा – यह भव उसका अन्तिम भव है।

इस तरह हे कल्याण चेष्टावंती ! यह तो हुआ उस पुत्र का वृत्तान्त, जो अंजना के गर्भ में स्थित है। अब अंजना का वृत्तान्त सुनो, जिसके कारण इसे पति का वियोग एवं कुटुम्ब द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा।

इस अंजना ने पूर्वभव में पटरानी पद के अभिमान के कारण अपनी सोत पर क्रोध करके देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को जिनमंदिर से बाहर निकाल दिया था। उसी समय समयश्री नामक आर्यिका इनके घर पर आहार हेतु पधारी थीं, किन्तु जिनप्रतिमा का अनादर देखकर उन्होंने आहार नहीं किया और प्रस्थान हेतु उद्यत हुई तथा इसे अज्ञानी समझकर अत्यन्त करुणापूर्वक उपदेश देने लगीं। कारण कि साधु तो सभी का कल्याण ही चाहते हैं और जीवों को समझाने के लिये पात्र से बिना पूछे ही गुरु-आज्ञा से धर्मोपदेश हेतु प्रवर्तते हैं। इसी प्रकार शील एवं संयम रूप आभूषण से अलंकृत समयश्री नामक आर्यिका भी अत्यन्त मधुर अनुपम वचनों के द्वारा पटरानी से कहने लगीं –

"अरे भोली ! सुनो ! तुम रूपवती हो, राजा की पटरानी हो और राजा का तुम्हारे प्रति विशेष स्नेह है – यह सब तो पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है।

यह जीव मोह के कारण चतुर्गति में परिभ्रमण करता हुआ महादुख का सेवन करता है। अनंतकाल में कभी महान पुण्योदय के कारण यह मनुष्यदेह प्राप्त करके भी जो सुकृत्य नहीं करता, वह तो हाथ में आये हुये रत्न को व्यर्थ ही खो देता है। अशुभ क्रियायें दुख की मूल हैं। अतः तू निज कल्याणार्थ श्रेष्ठ कार्यों में प्रवर्त – यही उत्तम है।

यह लोक तो महानिंद्य अनाचार से भरा हुआ है; जो स्वयं इस संसार से तिरते हैं, वे धर्मोपदेश द्वारा अन्य जीवों को भी तारने में निमित्त होते हैं, अतः उनके समान अन्य कोई उत्तम नहीं है, वे कृतार्थ हैं और ऐसे

संत मुनियों के जो नाथ हैं, जो सर्वजगत के भी नाथ हैं – ऐसे धर्मचक्री श्री अरिहन्त देव हैं, जो उनके प्रतिबिम्ब का अविनय करते हैं, वे मूढ़ भव-भव में निकृष्ट गतियों को प्राप्त करते हैं और भयंकर दुःख को भोगते हैं, जो कि वचन-अगोचर हैं।

यद्यपि श्री वीतरागदेव तो राग-द्वेष विहीन हैं, वे न तो अपने सेवकों से प्रसन्न होते हैं और न अपने निन्दकों से द्वेष करते हैं – वे तो महामध्यस्थ वीतराग भाव को धारण करने वाले हैं, तथापि जो जीव उनकी सेवा करता है, वह स्वर्ग एवं मोक्षसुख को प्राप्त होता है और उनकी निन्दा करने वाला नरक-निगोद के दुखों को प्राप्त करता है, क्योंकि जीवों के सुख-दुख की उत्पत्ति अपने ही परिणामों से होती है। जैसे अग्नि इच्छा रहित है, तथापि उसके सेवन से शीत का निवारण होता है, उसी प्रकार जिनदेव इच्छारहित वीतराग हैं, तथापि उनके अर्चन-सेवन से स्वयमेव सुखोपलब्धि होती है और उनके अविनय से दुखोपलब्धि होती है।

हे पुत्री ! इस संसार में दृष्टिगोचर समस्त दुख पाप के ही फल हैं और समस्त सुख धर्म का ही फल है। पूर्व पुण्योदय के फलस्वरूप तू राजा की पटरानी हुई है, महासम्पत्ति एवं अद्भुत कार्यक्षमता से युक्त पुत्र रत्न की प्राप्ति तुझे पूर्व पुण्योदय से हुई है, अतः इस अवसर में तुझे वह कार्य करना चाहिये, जिससे तुझे सुख प्राप्त हो। मेरे इन वचनों को सुनकर तू शीघ्र आत्मकल्याणार्थ तत्पर हो जा ! हे भव्य ! आँख होते हुये भी कुएँ में गिरने सदृश कार्य तेरे लिये शोभास्पद नहीं कहा जा सकता।

यदि इस अवसर में भी तूने ऐसे घृणास्पद कार्य का परित्याग नहीं किया तो तुझे नरक-निगोद के दुख प्राप्त करने पड़ेंगे।

देव-शास्त्र-गुरु का अविनय तो महादुख का कारण है, तेरे में विद्यमान इस प्रकार के दोष देखकर भी यदि मैं सम्बोधन न करूँ तो मुझे प्रमाद का दोष लगता है – इस कारण तेरे कल्याण के लिये यह धर्मोपदेश तुझे दिया है।"

– इस प्रकार आर्यिका श्री के उपदेश से रानी कनकोदरी नरक के दुखों से भयभीत हुई और उसने सम्यग्दर्शन सहित श्रावक के व्रत अंगीकार कर लिये और श्री जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को अत्यन्त बहुमान पूर्वक श्री जिनमन्दिर में वापिस विराजमान करवाया तथा महा उत्सवपूर्वक भगवान की पूजा का भव्य आयोजन किया। इस प्रकार सर्वज्ञदेव प्रणीत धर्म की आराधना करके वह पटरानी कनकोदरी स्वर्ग में गयी और स्वर्ग से चयकर राजा महेन्द्र की पुत्री तू अंजना हुई है।''

श्री मुनिराज कहते हैं – ''हे पुत्री ! तूने पूर्व पुण्योदय के कारण राजकुल में जन्म लिया और उत्तम वर को प्राप्त किया है, किन्तु तुमने जिनप्रतिमा को मन्दिर से बाहर निकाल दिया था, उसी के फलस्वरूप तुम्हें पति का वियोग एवं कुटुम्बीजनों द्वारा किया गया तिरस्कार सहना पड़ा।

विवाह के तीन दिन पूर्व कुमार पवनंजय अपने मित्र प्रहस्त के साथ गुप्तरूप से तुम्हारे महल के झरोखे पर आकर बैठे थे, उसी समय मिश्रकेशी सखी द्वारा की गयी विद्युतप्रभ की प्रशंसा एवं पवनंजय की निंदा उन्होंने सुन ली थी – इसी कारण पवनकुमार को तुम्हारे प्रति द्वेष हो गया था। तत्पश्चात् युद्ध में प्रस्थान करते समय उन्होंने जब मानसरोवर पर पड़ाव डाला, तब वहाँ एक चकवी को विरहताप से संतप्त देखकर उनका हृदय करुणा से भीग गया और वही करुणा सखीरूप होकर उन्हें तुम्हारे महल तक ले आयी – इस प्रकार तुम्हें गर्भ रहा और कुमार ने गुप्तरूप से ही वापस युद्ध हेतु प्रस्थान कर दिया।''

मुनिराज के श्रीमुख से अंजना सुन्दरी के लिये सहज ही करुणापूर्ण वचन प्रस्फुटित होने लगे – ''हे बालिके ! पूर्व भव में तुमने जिनप्रतिमा का अविनय किया था, यही कारण है कि तुम्हारी पवित्रता को भी कलंक का सामना करना पड़ा। पूर्व पाप के फलस्वरूप ही ऐसे घोर दुख को प्राप्त हुयी हो, अत: अब कभी इस तरह के निंद्य कार्य मत करना। अब तो तुम

अपने चित्त को संसार-सागर के तारण हार श्री जिनेन्द्रदेव की भक्ति में ही लगाओ, कारण कि जिनेन्द्र भक्ति के फलस्वरूप सर्व दुखों का सहज ही अभाव हो जाता है।"

इस प्रकार मुनिराज के श्रीमुख से अपने पूर्वभव का वृत्तान्त श्रवणकर अंजना सुन्दरी को बहुत दुख हुआ। अत: वह अपने द्वारा किये गये पापाचरण की निन्दा करती हुई वह बारम्बार पश्चाताप करने लगी।

अंजना के अन्तर्द्वन्द्व से परिचित मुनिराज उससे कहने लगे – "हे पुत्री ! तू शान्त होकर निज शक्ति अनुसार जिनधर्म का सेवन कर। परम भक्ति पूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव एवं अन्य संत धर्मात्माओं की सेवा कर – उपासना कर। तेरे द्वारा पूर्वकाल में किये गये अधोकर्म का फल यद्यपि तुझे अधोगति की प्राप्ति के रूप में प्राप्त होता, पर समयश्री आर्यिका ने धर्मोपदेशरूपी हस्तावलम्बन प्रदान कर तुझे कुगति-गमन से बचा लिया। कुछ ही दिनों पश्चात् तुम्हें परम सुख प्राप्त होगा। तेरा पुत्र देवों से भी न जीता जा सके – ऐसा पराक्रमी होगा और कुछ ही दिनों पश्चात् तुम्हें अपने पति का संयोग प्राप्त होगा। अत: हे भव्य ! तू अपने चित्त के क्षोभ का परित्याग कर और प्रमाद रहित हो, धर्मकार्य में तत्पर बन।"

मुनिश्री के अमृतमयी वचनों को सुनकर दोनों सखियों को महान हर्ष हुआ, उनके नेत्र आनन्दाश्रु बरसाने लगे।

"अहो ! इस घनघोर वन में आप धर्मपिता हमें प्राप्त हुये, आपके दर्शन से हमारे दुख दूर हुये, हे प्रभो ! आप ही परमशरणभूत हैं।"

– इस प्रकार महाविनयपूर्वक स्तुति करती हुई दोनों सखियाँ बारम्बार मुनिवर के चरणों में नमन करने लगीं। मुनिश्री भी उन्हें धर्मामृतपान कराकर आकाश मार्ग से गमन कर गये।

अंजना अपने पूर्वभव के प्रसंगों से परिचित होकर पाप से भयभीत होती हुई धर्म में तत्पर हो गयी। 'मुनिराज के निवास से यह गुफा पावन

हुई है।' – ऐसा विचार कर दोनों सखियाँ वहीं रहने लगीं एवं पुत्र-जन्म का इन्तजार करने लगीं।

इस प्रकार सखी सहित गुफा में निवास कर रही अंजना सती, धर्म के चिन्तवन, वैराग्य-भावनाओं के मनन एवं देव-गुरु-धर्म की भक्ति पूर्वक समय व्यतीत करने लगी। तथा वसंतमाला विद्याबल से खान-पानादि की समुचित व्यवस्था करती रही।

उसी गुफा में श्री मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा स्थापित थी, अतः दोनों सखियाँ भक्ति पूर्वक उत्तम द्रव्यों से जिनदेव की पूजन करतीं, साथ ही वसंतमाला सदा अनेक प्रकार के विनोद से अंजना को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती।

बस ! एकमात्र यही चिन्ता दोनों के अन्तःस्थल में थी कि प्रसूति सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाये।

दिन अस्त हुआ, सांझ का लाल रंग ऐसा छा गया मानो, अभी क्रोध से युक्त सिंह आयेगा और थोड़ी ही देर में उपसर्ग होगा – ऐसी सूचना देती हुई अंधियारी रात्रि भी आ पहुँची। भययुक्त पशु-पक्षी शान्त हो गये, कभी-कभी अचानक सियारों की चीखें सुनायी देतीं, मानो आने वाले उपसर्ग के ढोल बज रहे हों।

– ऐसी अंधियारी रात्रि में वे दोनों सखियाँ उस गुफा में बैठी वार्तालाप कर रही थीं कि तभी भयंकर गर्जना करता हुआ एक सिंह गुफा द्वार पर आ पहुँचा। उसकी गर्जना से सारी गुफा तो ऐसे गूँज उठी, मानो भयाक्रांत पर्वत ही रुदन कर रहा हो।

सिंह की भयानक गर्जना सुनकर अंजना ने प्रतिज्ञा की कि इस उपसर्गकाल में मेरा अनशन व्रत है। सखी वसंतमाला अंजना की रक्षा करने के लिये अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक हाथ में तलवार लेकर आस-पास घूमने लगी, दोनों सखियाँ भयाक्रांत हो गईं।

तभी उस गुफा में निवास कर रहे मणिचूलनामक गंधर्वदेव की रत्नचूला नामक स्त्री ने उससे कहा – "हे देव ! देखो ! ये दोनों स्त्रियाँ सिंह के भय से अत्यन्त विह्वल हो रही हैं, ये दोनों धर्मात्मा हैं। अत: इनकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है।"

गन्धर्वदेव का हृदय भी दया से द्रवित हो गया, अत: उसने शीघ्र ही विक्रिया द्वारा अष्टापद का रूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् सिंह और अष्टापद के युद्ध की भयंकर गर्जना चहुँ ओर फैलने लगी।

इधर गुफा में अंजना तो जिनदेव के ध्यान में निमग्न थी और वसंतमाला सारस की भांति इस तरह विलाप कर रही थी – "हाय अंजना ! पहले तो पति-वियोग से तू दुखी हुई, किसी प्रकार पति समागम का सुख प्राप्त हुआ और गर्भ रहा तो सास ने बिना विचारे तुझ पर मिथ्या कलंक लगाकर घर से निष्कासित कर दिया। माता-पिता ने भी आश्रय देने से इन्कार कर दिया। अत: महाभयंकर वन में शरण प्राप्त की, यहाँ महान पुण्योदय से मुनिराज के दर्शन प्राप्त हुये, मुनिवर ने पूर्वभव बताकर धैर्य बँधाया, धर्मामृत पान कराया एवं गमन कर गये। प्रसूति के लिये तू इस गुफा में आयी तो अब यह सिंह भक्षण करने के लिये तैयार खड़ा है। हाय ! हाय !! यह राजपुत्री निर्जन वन में मरण को प्राप्त हो रही है। अरे ! इस वन के देवताओ ! दया करके इसकी रक्षा करो।

अरे, मुनिराज ने तो कहा था कि अंजना अब तेरे सर्व दुख दूर होंगे, तब ये मुनि के वचन अन्यथा किस प्रकार हो सकते हैं ?''

इस प्रकार विलाप करती हुई वसन्तमाला झूले की तरह कभी अंजना के पास जाती तो कभी गुफा द्वार पर आती।

इधर गुफा द्वार से बाहर अष्टापदरूपधारी गंधर्वदेव ने अपने पंजों के प्रहार से सिंह को घायल करके भगा दिया और स्वयं अपने स्थान पर चला गया – इस प्रकार एक ही क्षण में सिंह एवं अष्टापद दोनों ही विलीन हो गये।

सिंह और अष्टापद के युद्ध का स्वप्नवत् विचित्र चरित्र देखकर वसंतमाला को बहुत आश्चर्य हुआ। उपसर्ग दूर हुआ जानकर वह गुफा में अंजना सुन्दरी के समीप आयी और अत्यन्त कोमल हाथ फैरते हुए उसे आश्वासन प्रदान करने लगी। मानो उसका नया जन्म हुआ हो – इस प्रकार हितकारक वार्ता करने लगी।

गुफा में ही बैठी हुई कभी तो वे धर्मकथा करतीं तो कभी भगवान की भक्ति करतीं, कभी मुनिराज को याद करतीं तो कभी याद करती कुटुम्बीजनों के बर्ताव को – इस प्रकार अर्धरात्रि व्यतीत हो गयी....।

तभी अचानक उनके कान में संगीत का अत्यन्त मधुर स्वर सुनायी देने लगा। ऐसी मध्यरात्रि में सुनसान गुफा में जिनेन्द्र भक्ति की मधुर झंकार को सुनकर दोनों का आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही था। वे दोनों एकाग्रचित्त से उस मधुर भक्तिरस का पान करने लगीं।

जैसे गरुड़ सर्प को भगा देता है, इसी प्रकार अष्टापद रूपधारी गन्धर्व भी सिंह को भगाकर रात्रि के शांत वातावरण में आनन्दपूर्वक वीणा बजाकर श्री जिनेन्द्रदेव का गुणगान कर रहा था। गंधर्वदेव गान विद्या में प्रसिद्ध होते हैं, राग के उन पचास स्थानों में वे भी प्रवीण होते हैं।

गंधर्वदेव द्वारा की गई भगवान की स्तुति का सार इसप्रकार है –

"मैं सर्वज्ञ परमात्मा श्री अरिहन्तदेव को अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। जो देवों के द्वारा भी पूज्य हैं – ऐसे देवाधिदेव श्री मुनिसुव्रतनाथ के चरणयुगल में अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। हे भगवान ! आप त्रिभुवन में श्रेष्ठ मुक्तिमार्ग के नेता हैं। आपके चरणों के नख की प्रभा से इन्द्र के मुकुट के रत्न प्रकाशित होते हैं। हे सर्वज्ञदेव ! आप ही जीवों को परम शरणभूत हैं।"

इस प्रकार जिनेन्द्रप्रभु की अद्भुत भक्ति सुनकर दोनों सखियों का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपूर्व राग सुनने के कारण उन्हें विस्मय भी हुआ। गीत की प्रशंसा करती हुई वे कहने लगीं – "धन्य है यह गीत, लगता है जिनेन्द्रदेव के किसी अनन्य भक्त ने यह गीत गाया है, जिसे सुनकर हमारा हृदय रोमांचित हो गया है।"

वसंतमाला अंजना से कहने लगी – "हे सखी ! अवश्य ही यहाँ किसी दयावान देव का निवास है, जिसने पहले तो अष्टापद का रूप धारण कर सिंह को भगाकर आपकी रक्षा की और फिर आपके आनन्द के लिये यह मनोहर गीत गाया है।

हे देवी ! हे शीलवती !! तुम्हारी तो सभी रक्षा करते हैं। शीलवंत धर्मात्माओं के तो भयंकर वन में देव भी मित्र बन जाते हैं। – इस उपसर्ग के निवारण से यह स्पष्ट विदित होता है। शीघ्र ही तुम्हें अपने पति का समागम प्राप्त होगा और महापराक्रमी पुत्ररत्न प्राप्त होगा। मुनिराज के वचन कदापि अन्यथा नहीं हो सकते"

– इस प्रकार चर्चा-वार्ता से दोनों ने रात्रि व्यतीत की। प्रात:काल होने पर दोनों सखियों ने उठकर सर्वप्रथम गुफा में विराजमान श्री मुनिसुव्रतनाथ के जिनबिम्ब की अतिशय भक्तिपूर्वक पूजा-वन्दना की, तत्पश्चात् अंजना के चित्त को प्रसन्न करती हुई वसन्तमाला कहने लगी –

"हे देवी ! देखो तो तुम्हारे यहाँ आने से पर्वत एवं वन भी हर्षित

हो उठे हैं – यही कारण है कि झरनों के कल-कल नाद से वे भी मुस्कुरा रहे हैं, वन के वृक्ष नम्रीभूत होकर अपने फल मानो तुम्हें ही समर्पित कर रहे हैं। मोर, तोता एवं मैना मानो सुन्दर स्वर में तुम्हारा ही अभिनन्दन कर रहे हैं।

अत: हे कल्याणरूपिणी ! हे पुण्यवंती ! तुम चिन्ता का परित्याग कर प्रसन्न रहो, यहाँ अपने को किसी भी प्रकार से भयभीत नहीं होना चाहिये, देव भी तुम्हारी सेवार्थ तत्पर हैं। तुम्हारा शरीर निष्पाप है, तुम्हारा शील निर्दोष है – यही कारण है कि ये पक्षी भी तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं। तुम्हारे यहाँ निवास से सारा ही वन प्रफुल्लित हो उठा है, देखो ! देखो !! स्वयं सूर्य भी तुम्हारे दर्शनों के लिये उदित हो रहा है।''

वसंतमाला की प्रसन्नता वर्धक वार्ता का श्रवण कर अंजना कहने लगी – ''हे सखी ! जब तू मेरे साथ है तो सारा कुटुम्ब ही मेरे साथ है, तेरे प्रसाद से तो ये वन भी मेरे लिये नगर समान है। सच्चा बन्धु तो वही है, जो संकटकालीन परिस्थिति में सहायता करे। दुखदातार बन्धु नहीं हो सकता। हे सखी ! इस संकटकालीन समय में तेरे सामीप्य से मेरा सर्व दुख विस्मृत हो गया है।''

– इस प्रकार प्रेमपूर्वक वार्तालाप करती हुई वे दोनों सखियाँ उस गुफा में निवास कर रही थीं। दोनों मुनिसुव्रतनाथ प्रभु की प्रतिदिन पूजा-अर्चना करतीं और वसंतमाला विद्या बल से खान-पान की सब सामग्री एकत्रित कर विधिपूर्वक भोजन बनाती थी। गुफावासी गंधर्वदेव उनकी हर प्रकार रक्षा करता था और बारम्बार विविध रागों से जिनदेव की स्तुतियाँ सुनाता था। इतना ही नहीं, वनवासी हिरणादि पशु भी उन दोनों सखियों से हिल-मिल गये थे।

इस प्रकार दोनों का समय व्यतीत हो रहा था।

हनुमान का जन्म –

इसी प्रकार कितने ही दिन व्यतीत हो गये। अंजना के प्रसूति का समय निकट था, अतः वह अपनी सखी से कहने लगी – "हे सखी ! मैं कुछ व्याकुलता अनुभव कर रही हूँ।"

उसकी बात सुनकर वसंतमाला ने कहा – "हे देवी ! तुम्हारे प्रसूति का समय निकट है, अतः तुम चिन्ताओं का परित्याग कर आनंदित होओ। – ऐसा कहकर उसने अंजना के लिये कोमल शैय्या का निर्माण कर दिया।

जैसे पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करती है, उसी तरह अंजना ने सूर्यसम तेजस्वी हनुमान को जन्म दिया, उसका जन्म होते ही गुफा में व्याप्त अंधकार विलय हो गया और वहाँ प्रकाश का साम्राज्य हो गया। ऐसा लगता था मानो वह गुफा ही सुवर्ण-निर्मित हो।

अपने पुत्र को छाती से लगाकर दीनतापूर्ण स्वर में अंजना कहने लगी – "हे पुत्र ! इस गहन वन में तू उत्पन्न हुआ है, अतः मैं तेरा जन्मोत्सव किस प्रकार मनाऊँ ? यदि तेरा जन्म तेरे दादा या नाना के यहाँ होता तो निश्चित ही उत्साहपूर्ण तेरा जन्मोत्सव मनाया जाता। अहो ! तेरे मुखरूपी चन्द्र को देखकर कौन आनंदित न होता ? किन्तु मैं भाग्यहीन, सर्ववस्तु विहीन हूँ, अतः जन्मोत्सव का आयोजन करने में असमर्थ हूँ। हे पुत्र ! अभी तो मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ कि तू दीर्घायु हो, कारण कि जीवों को अन्य वस्तुओं की प्राप्ति की अपेक्षा दीर्घायु होना दुर्लभ है।

हे पुत्र ! यदि तू है तो मेरे पास सब कुछ है। इस महान गहन वन में भी मैं जीवित हूँ – यह भी तेरा ही पुण्य प्रताप है।"

अंजना के इन वचनों को सुनकर वसंतमाला कहने लगी – "हे देवी ! तुम प्रसन्न होओ। तुम कल्याणमयी हो, तभी तो ऐसे महान पुत्ररत्न की प्राप्ति तुम्हें हुई है। तेरा पुत्र सुन्दर लक्षणों से सुशोभित है, यह महाऋद्धि का धारक होगा।

मुनिराज का वह वचन याद करके कि 'यह पुत्र चरम शरीरी है' – इस पुत्र के जन्म देने से तो निश्चित ही तेरी कोख पवित्र हो गयी है। यह बालक तेजस्वी है, इसके प्रभाव से सब अच्छा ही होगा, अतः तू व्यर्थ चिन्ता का परित्याग कर एवं पुत्र का अवलोकन करके आनंदित हो।

देख ! यह वन भी तेरे पुत्र का जन्मोत्सव मना रहा है। वृक्ष एवं पुष्प भी पुलकित होकर मुस्करा रहे हैं, बेलें हर्ष में डोल रही हैं, मयूर नृत्य एवं भँवरे मधुर गुँजार कर रहे हैं, हिरण भी वात्सल्य से तेरे पुत्र का अवलोकन कर रहे हैं – इस प्रकार तेरे पुत्र के जन्मोत्सव से तो सारा वन ही प्रफुल्लित हो गया है।"

दोनों सखियों में इस प्रकार परस्पर वार्तालाप चल ही रहा था कि तभी वसन्तमाला ने आकाशमार्ग से सूर्यसम तेजस्वी एक विमान आता हुआ देखा। इसकी सूचना उसने अपनी स्वामिनी अंजना को दी।

विमान दृष्टिगोचर होते ही अंजना भयभीत हो शंकाशील हो गयी और जोर से पुकारने लगी – अरे ! यह कोई शत्रु निष्कारण ही मेरे पुत्र का अपहरण करने आया है या कोई मेरा हितैषी है ?"

अंजना की उक्त पुकार सुनकर विमान में विद्यमान विद्याधर को दया उत्पन्न हो गयी, अतः उसने अपने विमान को गुफा द्वार के समीप उतार दिया और विनयपूर्वक पत्नी सहित गुफा में प्रवेश किया।

निर्मल चित्तधारी विद्याधर को गुफा में प्रवेश करते देखकर वसंतमाला ने उसका यथोचित आदर-सत्कार किया। कुछ देर तक तो विद्याधर मौनपूर्वक बैठा रहा, तत्पश्चात् गंभीरवाणी में उसने वसंतमाला से पूछा – "हे बहिन ! सुमर्यादाधारक यह स्त्री कौन है ? इसके पिता एवं पति का क्या परिचय है ? यह तो किसी बड़े घर की लगती है, फिर भी कुटुम्बीजनों से बिछुड़ कर इसके वन-निवास का क्या कारण है ? जगत में राग-द्वेष रहित उत्तम जीवों के भी पूर्वकर्मोदय के फलानुसार बिना

कारण जीव शत्रु बन जाते हैं। यह तो धर्मात्मा ज्ञात होती है, इस पर इस संकट का कारण क्या है ?"

विद्याधर द्वारा स्नेहपूर्वक पूछे गये प्रश्नों के प्रत्युत्तरस्वरूप वसंतमाला दुख से रुँधे हुये स्वर में कहने लगी – "हे महानुभाव ! आपके वचनों द्वारा ही आपके मन की पवित्रता ज्ञात हो रही है। जैसे दाह-नाशक चंदन वृक्ष की छाया भी प्रिय प्रतीत होती है, इसी तरह आप जैसे गुणवान पुरुषों की छाया भी हृदय के भाव प्रगट करने का स्थान है। आप जैसे महानुभाव के समक्ष दुख निरूपण करने से दुख निवृत्त हो जाता है, आप दुख-हर्त्ता हैं, कारण कि आपदाओं में सहायता करना तो सज्जनों का स्वभाव ही है। आपने हमारा दुख सुनने की अभिलाषा व्यक्त की है, अत: मैं सुनाती हूँ, आप ध्यान पूर्वक सुनिये –

इस स्त्री का नाम अंजनां है, यह भूतल पर प्रसिद्ध महेन्द्र राजा की पुत्री है एवं राजा प्रहलाद के पुत्र पवनंजय इसके पति हैं।"

तत्पश्चात् वसंतमाला ने पवनकुमार के अप्रिय प्रसंग एवं युद्ध से वापस आना, सास द्वारा घर से निष्कासित करना इत्यादि सर्व प्रसंगों का ज्यों का त्यों वर्णन करते हुये कहा – "हे महानुभाव ! यह अंजना सर्वदोष परिमुक्त, सती, शीलवंती एवं निर्विकार है, धर्मात्मा है। यहाँ रहकर मैं भी इसकी सेवा करती हूँ, मैं इसकी आज्ञाकारिणी सेविका एवं विश्वासपात्र सखी हूँ, मुझ पर इसकी विशेष कृपा-दृष्टि है। आज ही गुफा में इसने बालक को जन्म दिया है। अनेक भयों से मुक्त इस वन में कौन जाने किस-तरह इसे सुख प्राप्त होगा ? – हे राजन् ! यह हमारे दुख का संक्षिप्त वृत्तान्त है। सम्पूर्ण दुख तो अकथनीय है।"

इस प्रकार अंजना के दुखरूपी आताप से पिघलकर वसंतमाला के हृदय में स्थित स्नेह, वचनों द्वारा अभिव्यक्त हो गया।

वसंतमाला द्वारा कथित अंजना की करुण-कथा सुनकर विद्याधर

राजा अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहने लगा – "हे भव्यात्मा ! मैं हनुमत द्वीप का राजा प्रतिसूर्य हूँ और यह अंजना मेरी भानजी (बहिन की पुत्री) है। बहुत दिनों पश्चात् मैंने इसे देखा है, अतः पहिचान न सका"

– ऐसा कहकर राजा प्रतिसूर्य अंजना के बाल्यावस्था का सम्पूर्ण वृत्तान्त गद्‌गद्‌वाणी से सुनाते हुये अश्रुपात करने लगे, अंजना भी उन्हें अपना मामा समझकर रुदन करने लगी – ऐसा लगता था, मानो आँसुओं के बहाने उसका सम्पूर्ण दुख ही बह रहा हो। यह लौकिक रीति है कि दुख प्रसंग में अपने हितैषी को देखते ही अनायास रोना आ जाता है – यही स्थिति उस समय उस गुफा में हो रही थी।

अंजना रुदन कर रही थी तो मामा-मामी एवं वसंतमाला के नयन भी अश्रुओं की धारा बहा रहे थे। उन चारों के रुदन से गुफा इस तरह गूँज रही थी मानो पर्वत एवं झरने भी रुदन कर रहे हों। रुदन कीं ध्वनि से सारा वन गूँज उठा था – ऐसा लगता था मानो सारा वन रुदन कर रहा हो और तो और वनवासी हिरणादि पशु भी उनके रुदन में शामिल हो गये थे।

कुछ देर पश्चात् राजा प्रतिसूर्य शान्त हुये और उन्होंने अंजना को भी शान्त किया, उस समय वन भी शान्त हो गया मानो वह भी उनकी वार्ता सुनने को उत्साहित हो।

सर्वप्रथम तो अंजना प्रतिसूर्य की रानी अर्थात् अपनी मामी के साथ बातचीत करने लगी। महापुरुषों की यही विशेषता है कि वे दुख में भी अपने कर्तव्य से चलित नहीं होते।

तत्पश्चात् अंजना अपने मामा से कहने लगी – "हे पूज्य ! आप इस पुत्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्योतिषियों से पूछें।",

तब अपने साथ समागत ज्योतिषी से राजा ने वृत्तान्त जानने की इच्छा जाहिर की तो उसके उत्तर में ज्योतिषी कहने लगा – "इस बालक का जन्म समय क्या है – यह बताओ ?"

"आज ही अर्द्धरात्रि व्यतीत होने के पश्चात् इसका जन्म हुआ है" – वसंतमाला ने कहा।

तब लग्न स्थापित कर एवं बालक के शुभलक्षणों को पहिचानकर ज्योतिषी ने कहा – "यह बालक तो तद्भव मोक्षगामी है। यह इसका अंतिम जन्म है अर्थात् अब दूसरा जन्म यह धारण नहीं करेगा। इसकी जन्म तिथि फाल्गुन कृष्णा अष्टमी तथा नक्षत्र श्रावण है और सूर्यचन्द्रादि समस्त गृह उत्तम स्थानों में सुस्थित हैं। बलवान हैं, ब्रह्मयोग है तथा शुभ मुहूर्त है; अतः निश्चित ही यह बालक अद्भुत राज्य प्राप्त करेगा, साथ ही मुक्तिप्रदाता योगीन्द्रपद भी यह प्राप्त करेगा – इस प्रकार राजेन्द्र एवं योगीन्द्र दोनों पद प्राप्त कर अविनाशी सुख को प्राप्त करेगा।"

ज्योतिषी की बात सुनकर सबको अत्यन्त हर्ष हुआ।

कुछ देर पश्चात् राजा प्रतिसूर्य ने अंजना से कहा – "हे पुत्री ! चलो अब हम सब अपने राज्य हनुमत द्वीप के लिये प्रस्थान करते हैं। वहाँ पहुँच कर इस पुत्र के जन्मोत्सव का विशाल आयोजन करना है।"

अंजना ने राजन् के कथन को स्वीकार कर सर्वप्रथम गुफा में विराजमान भगवान जिनेन्द्र की भावपूर्ण वन्दना की, पश्चात् पुत्र को गोद में लिया, तत्पश्चात् गुफा के अधिपति गंधर्वदेव से क्षमायाचना कर प्रतिसूर्य के परिवार के साथ गुफा द्वार से बाहर निकल आयी और विमान के समीप पहुँचकर खड़ी हो गयी, उसे जाते देखकर मानो सम्पूर्ण वन ही उदास हो गया, वन के पशु हिरणादि भी भीगी पलकों से विदा करते हुये टुकुर-टुकुर उसे निहारने लगे....गुफा, वन एवं पशुओं पर एक बार स्नेहभरी दृष्टि डालकर सखी सहित अंजना विमान में बैठ गई।

विमान आकाशमार्ग से जा रहा है। अंजना सुन्दरी की गोद में बालक खेल रहा है, सभी विनोद कर रहे हैं कि तभी अचानक....कुतूहल से हँसते-हँसते वह बालक माता की गोद से उछलकर नीचे पर्वत पर जा

गिरा। बालक के गिरते ही उसकी माता (अंजना) हाहाकार करने लगी। राजा प्रतिसूर्य ने तत्काल विमान को पृथ्वी पर उतार दिया।

अंजना के दीनतापूर्वक विलाप के स्वर सुनकर जानवरों के हृदय भी करुणा से द्रवित हो उठे – "हे पुत्र ! यह क्या हुआ ? अरे ! यह भाग्य का खेल भी कितना निराला है, पहले तो मुझे रत्नों से परिपूर्ण निधान बताया और पश्चात् मेरे रत्न को हरण कर लिया। हा ! कुटुम्ब के वियोग से व्याकुलित मुझ दुखिया का यह पुत्र ही तो एकमात्र सहारा था, यह भी मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों ने मुझसे छीन लिया। हाय पुत्र ! तेरे बिना अब मैं क्या करूँगी ?"

इस प्रकार इधर तो अंजना विलाप कर रही थी और उधर पुत्र हनुमान जिस पत्थर की शिला पर गिरा था, उस पत्थर के हजारों टुकड़े हो गये थे, जिसकी भयंकर आवाज को सुनकर राजा प्रतिसूर्य ने वहाँ जाकर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'क्या देखा उन्होंने ?' उन्होंने देखा कि बालक तो एक शिला पर आनन्द से मुँह में अपना अँगूठा लेकर स्वतः ही क्रीड़ा कर रहा है, मुख पर मुस्कान की रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है, अकेला पड़ा-पड़ा शोभित हो रहा है। अरे ! जो कामदेव पद का धारक है, उसके शरीर की उपमा किससे दी जावे, उसका शरीर तो सुन्दरता में अनुपम होगा ही।

दूर से ही बालक की ऐसी दशा देखकर राजा प्रतिसूर्य को अपूर्व आनन्द हुआ। जिसने अपने प्रताप से पर्वत के खण्ड-खण्ड कर दिये, जिसका आत्मा धर्म से युक्त है और जिसका शरीर तेजस्वी है – ऐसे निर्दोष बालक को आनन्द से क्रीड़ा करते हुये देखकर अंजना को भी अपूर्व आनन्द हुआ। उसने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसके सिर का चुंबन किया और छाती से लगा लिया।

इस आश्चर्यकारी दृश्य से हर्षित हो राजा प्रतिसूर्य अंजना से कहने

लगे – "हे पुत्री ! तुम्हारा यह पुत्र उत्तम संस्थान एवं उत्तम संहनन का धारक है, बज्रकाय है, तभी तो इसके गिरने से पर्वत के खण्ड-खण्ड हो गये। जब बाल्यावस्था में ही इसकी शक्ति देवों से अधिक है, तब यौवनावस्था में इसका पराक्रम कितना होगा ? अब यह तो निश्चित ही है कि यह जीव चरमशरीरी है, तद्भव मोक्षगामी है, पुन: देह धारण का कलंक इसको नहीं लगेगा, यह तो इसी भव में अशरीरी सिद्ध पद प्राप्त करेगा।"

– इतना कहकर राजा प्रतिसूर्य ने अपनी पत्नी सहित बालक की तीन प्रदक्षिणा की तथा हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् पुत्र सहित अंजना को अपने विमान में बैठाकर अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

राजा के शुभागमन के शुभ समाचारों को सुनकर प्रजांजनों ने नगर का शृंगार किया और राजा सहित सभी का भव्य स्वागत किया। अत्यन्त उत्साहपूर्ण वातावरण में पुत्र सहित अंजना एवं राजा प्रतिसूर्य ने नगर में प्रवेश किया। दशों दिशाओं में वादित्र के नाद से उन विद्याधरों ने पुत्र जन्म का भव्य महोत्सव मनाया। जैसा उत्सव स्वर्गलोक में इन्द्रजन्म का होता है, उससे किसी भी तरह यह उत्सव कम नहीं था।

पर्वत में (गुफा में) जन्म हुआ और विमान से गिरने पर पर्वत खण्ड-खण्ड हो गया, अत: उस बालक की माता एवं मामा ने उसका नाम 'शैलकुमार' रखा तथा हनुमत द्वीप में उसका जन्मोत्सव आयोजित होने के कारण जगत में वह 'हनुमान' नाम से विख्यात हुआ।

इस प्रकार शैल अथवा हनुमानकुमार हनुमत द्वीप में रहते थे, देव सदृश प्रभा के धारी उन हनुमानकुमार की चेष्टायें सभी के लिये आनन्ददायिनी बनी हुई थीं।

राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुये श्री गौतमस्वामी कहते हैं–

"हे श्रेणिक ! प्राणियों के पूर्वोपार्जित पुण्य के फलस्वरूप पर्वतों का भेदक महाकठोर बज्र भी पुष्पसमान कोमलरूप परिणमित हो जाता है। महा आतापकारक अग्नि भी चन्द्र-किरण सदृश शीतल बन जाती है, इसी तरह तीक्ष्ण धारयुक्त तलवार भी मनोहर कोमल लतासदृश हो जाती है – ऐसा जानकर जो जीव विवेकी हैं, वे पाप से विरक्त हो जाते हैं। हे जीवो ! इस बात को श्रवणकर तुम भी जिनराज के पवित्र चरित्र के अनुरागी बनो।

कैसा है जिनराज का चरित्र ? "मोक्षसुख देने में चतुर है।"

यह सारा जगत ही मोह के कारण जन्म-जरा एवं मरण के दुखों से अत्यन्त तप्तायमान है, उन दुखों से छुड़ाकर परम सुख प्रदान करने में समर्थ – ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान के वीतरागी चरित्र का अनुसरण करो।"

पवन कुमार की व्यथा –

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं – "हे मगधाधिपति ! यह तो मैंने श्री हनुमान के जन्म का वृत्तान्त कहा, अब हनुमान के पिता पवनंजय का वृत्तान्त सुनो –

अंजना सुन्दरी से विदा प्राप्त कर पवनंजय शीघ्र ही विमान से महाराज रावण के समीप पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार उन्होंने राजा वरुण से युद्ध कर खरदूषण को मुक्त कराया एवं राजा वरुण को बंदी बनाकर महाराज रावण के समक्ष प्रस्तुत किया।

पवनकुमार की अद्भुत शूरवीरता से महाराज रावण को अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् महाराज रावण से विदा प्राप्त कर कुमार पवनंजय ने अंजना के स्नेह के वशीभूत होकर शीघ्र ही अपने राज्य की तरफ प्रस्थान कर दिया।

जब राजा प्रहलाद को विजयी कुमार के शुभागमन का समाचार प्राप्त हुआ तो उन्होंने नगर का शृंगार करवाकर कुमार का स्वागत किया।

पवनकुमार ने भी राजमहल में पहुँचकर अपने माता-पिता को सादर प्रणाम किया। किंचित् समय राज्य सभा में बैठकर सबसे कुशल समाचार पूछे और तत्पश्चात् शीघ्र ही प्रहस्त मित्र के साथ अंजना के महल की तरफ प्रस्थान किया। किन्तु.... जैसे जीव विहीन शरीर शोभास्पद नहीं लगता, उसी तरह अंजना रहित वह महल भी उन्हें मनोहर न लगा। इस कारण कुमार का मन अप्रसन्न हो गया और वह प्रहस्त से कहने लगा

हे मित्र ! यहाँ तो प्राणप्रिया अंजना कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रही, वह कहाँ होगी ? उसके बिना तो यह महल एकदम सुनसान प्रतीत हो रहा है, अतः तुम जाकर ज्ञात करो कि वह कहाँ है ?

प्रहस्त ने वहाँ प्रियजनों से पूछकर कुँवर से कहा – "हे मित्र ! अंजना के चरित्र पर संदेह करके राजमाता ने उन्हें महेन्द्रनगर भिजवा दिया।"

प्रहस्त द्वारा कथित यह वृत्तान्त सुनते ही कुमार के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ, चित्त उदास हो गया, अतः माता-पिता से आज्ञा प्राप्त किये बिना ही उन्होंने अपने मित्र के साथ महेन्द्रनगर की तरफ प्रस्थान किया।

महेन्द्रनगर ज्यों-ज्यों करीब आता जा रहा था, त्यों-त्यों उनका मन प्रिया-मिलन की मधुर कल्पनाओं से आनंदित हो रहा था।

प्रसन्न-चित्त कुमार ने प्रहस्त से कहा – हे मित्र ! देखो यहाँ अंजना सुन्दरी का निवास स्थान होने से यह नगर कैसा मनोहर ज्ञात हो रहा है। जैसे कैलाश पर्वत पर स्थित जिनमंदिर के शिखर शोभायमान हैं, इसी तरह यहाँ के महलों के शिखर भी शोभायमान हो रहे हैं।" – इस तरह बातचीत करते हुये दोनों मित्र नगर के समीप जा पहुँचे।

ज्यों ही पवनकुमार के शुभागमन का समाचार राजा महेन्द्र को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उनका भव्य स्वागत कर नगर में प्रवेश करवाया।

महल में पधारकर कुमार कुछ समय राजा महेन्द्र के पास बैठे और पश्चात् महारानी को नमस्कार कर अंजना को देखने की अभिलाषा से उसके महल की तरफ प्रस्थान किया, परन्तु....वहाँ भी अंजना को न पाकर अत्यन्त विरहातुर होते हुये किसी बालिका से पूछा – '

"बालिके ! हमारी प्रिय अंजना कहाँ है ?"

उत्तर देते हुये उसने कहा – "हे देव ! आपकी प्रिया यहाँ नहीं है, उसे तो महाराजश्री ने वनवास भेज दिया है।"

इस बात को सुनकर जैसे बज्रपात गिरा हो – ऐसे कुमार का हृदय चूर-चूर हो गया। जैसे कान में पिघला हुआ गर्म शीशा डाला गया हो – ऐसी उनकी दशा हो गयी, उनके होश खो गये। जीव रहित मृत शरीर जैसी उनकी दशा हो गयी। शोकाताप से उनका मुख एकदम कांतिविहीन हो गया। इस प्रकार हतोत्साहित होकर कुमार ने शीघ्र ही महेन्द्रनगर का परित्याग कर दिया और अंजना की खोज हेतु सोचने लगे।

कुमार को अत्यन्त आतुर देख कर उनके मित्र प्रहस्त को भी बहुत दुख हुआ। वह कहने लगा – "हे मित्र ! तुम खेद-खिन्न क्यों होते हो ? धैर्य धारण कर अपने चित्त को निराकुल करो। यह पृथ्वी है ही कितनी सी। अंजना जहाँ भी होगी, हर संभव प्रयत्न करके हम उसे खोज लेंगे।"

कुमार ने कहा – "हे मित्र ! तुम तो मेरे पिता के पास आदित्यपुर वापस जाओ और उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत कराकर कहना कि यदि मेरी प्रिया फिर से मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मेरा जीवन भी असंभव है। मैं स्वयं तो पृथ्वीतल पर चारों ओर उसकी खोज करूँगा ही, तुम भी योग्य व्यवस्था करो।"

कुमार की आज्ञानुसार प्रहस्त ने तो आदित्यपुर की तरफ प्रस्थान किया और इधर पवनकुमार अकेले ही अम्बरगोचर नामक हाथी पर चढ़कर अंजना की खोज हेतु पृथ्वी पर वन-जंगलों में चारों तरफ विचरण

करने लगे। उनके मन में अनेक प्रकार की आशंकायें उत्पन्न होने लगी – "अरे ! यह कोमल शरीरवाली अंजना शोक-संतप्त हो कहाँ गयी होगी, जिसके हृदय में सदैव ही मेरा ध्यान रहता था, वह विरहताप से तप्त हो सघन वन में किस तरफ गयी होगी ? वह सत्यवादी, निष्कपट, धर्मधारक और गर्भ के भार सहित कदाचित् वसंतमाला से बिछुड़ गयी होगी तो ? कहीं वह पतिव्रता श्राविका राजकुमारी शोक के कारण अन्धी तो नहीं हो गयी ? अथवा विकट वन में परिभ्रमण करते हुये भूखी-प्यासी कहीं अजगरों के स्थल गहन कुएँ में तो नहीं गिर गयी ? अथवा दुष्ट पशुओं की भयंकर गर्जना से भयभीत हो उस निर्दोष गर्भवती के प्राण तो नहीं छूट गये होंगे ?"

इस प्रकार चिन्तामग्न पवनकुमार वन में इधर-उधर भटकते हुये अंजना की शोध में तत्पर थे। उनके मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प की तरंगें तरंगित हो रहीं थीं। वे विचार रहे थे – "कहीं मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी अंजना इस घोर वन में पानी बिना कंठ सूखने से प्राण रहित तो नहीं हो गयी ? कदाचित् गंगानदी पार करते समय वह भोली राजबाला बह तो नहीं गयी ? ऐसा भी हो सकता है कि अनेक कंकड़-कांटों से उसके कोमल पैर बिंध गये हों और उसमें एक कदम चलने की शक्ति भी न रही हो ? कौन जाने क्या दशा हुई होगी ? कदाचित् महादुख के कारण गर्भपात हो गया हो और जिनधर्म भक्त वह सती अत्यन्त विरक्त भाव से आर्यिका ही बन गयी हो ?"

इस प्रकार मन में प्रवर्तित अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों सहित परिभ्रमण करते-करते पवनकुमार उसी गुफा के समीप पहुँचे, जहाँ पहले अंजना का निवास था। गुफा में प्रवेश करते ही पवन ने देखा कि वहाँ भगवान मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान है। जिनबिम्ब को देखते ही कुमार को विस्मय हुआ, वह भक्तिपूर्वक जिनदेव की वन्दना कर स्तुति करने लगा –

"हे वीतराग जिनेन्द्रदेव ! आपके चरण-कमल में मेरा सादर प्रणाम है। हे नाथ ! आप पूर्ण सुखी हैं, आप ही जगत के जीवों को शरणभूत हैं। हे सर्वज्ञपिता ! इस जगत में संयोग-वियोग से आकुलित जीव अपने हृदय में आपका ध्यान धारण कर शान्तिलाभ प्राप्त करते हैं।"

इस प्रकार स्तुति कर वह गुफा में बैठकर भगवान का ध्यान करने लगा। कुछ देर पश्चात् गुफा से बाहर आकर पवनकुमार विचार करने लगा – "इस गुफा में यह प्रतिमा कहाँ से आई ? किसने इस गुफा में इसकी स्थापना की ? कहीं अंजना तो यहाँ नहीं रहती थी ? अवश्य ही वह यहाँ रही होगी। वह तो जिनेन्द्र देव की परमभक्त है, अवश्य ही दर्शन-पूजनार्थ यह प्रतिमा उसने यहाँ स्थापित कराई होगी।

अहो ! कैसा भी संकटकाल हो, जिनेन्द्रदेव का विस्मरण धर्मात्मा जीव कैसे कर सकते हैं ?"

– इस प्रकार विचारकर कुमार उस गुफा में तथा वहीं आस-पास अंजना को खोजने लगे....खूब जोर-जोर से उसके नाम से पुकारने लगे, किन्तु कहीं भी अंजना का पता न लगा।

पर्वत और वन-जंगल में घूम-घूमकर पवनकुमार ने खोज की, पर कहीं भी अपनी प्राणप्रिया को नहीं खोज पाये, अत: वह अत्यन्त निराश हो गये, उस समय सारा जगत उन्हें शून्य प्रतीत हो रहा था। अत: उन्होंने प्राणोत्सर्ग का निर्णय कर लिया।

अंजना के बिना उनका मन न तो पर्वत पर लगता था और न गुफा में और न मनोहर वृक्ष और नदी के किनारे ही।

वे मोह से आच्छादित हो, विवेक-विहीन हो, वृक्षों से भी अंजना के विषय में पूछने लगे – "हे वृक्ष ! तूने कहीं मेरी प्रिया को देखा है ?"

पर्वत से पूछते हैं – "अरे पर्वत ! क्या तुमने अपनी किसी गुफा में अंजना को शरण प्रदान की है ?"

इस प्रकार भ्रमण करते हुये वे भूतरुवर वन में पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही हाथी से उतर पड़े।

जिस तरह मुनिजन आत्मा का ध्यान करते हैं, इसी तरह वह भी अपनी प्रिया का ध्यान करने लगे। हथियारादि सब सामग्री जमीन पर डाल दी और हाथी से कहने लगे – "हे गजराज ! अब तुम स्वच्छन्दता पूर्वक इस वन में भ्रमण करो।"

किन्तु हाथी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वह वहीं विनयपूर्वक खड़ा हो गया। उसे सम्बोधित करते हुये कुमार फिर कहने लगे – "हे गजेन्द्र ! इस नदी के किनारे विशाल वन है, तुम वहीं घास का सेवन करो और वन में स्थित हाथियों के समूह के नायक होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करो, अब तुम स्वतन्त्र हो।" लेकिन वह हाथी तो कृतज्ञ था, स्वामी भक्त था, अत: जैसे सच्चा भ्राता कभी भी अपने भाई का संग नहीं छोड़ता; उसी प्रकार उस हाथी ने कुमार के संग का त्याग नहीं किया, वह भी उदास-चित्त हो कुमार के समीप ही निवास करने लगा।

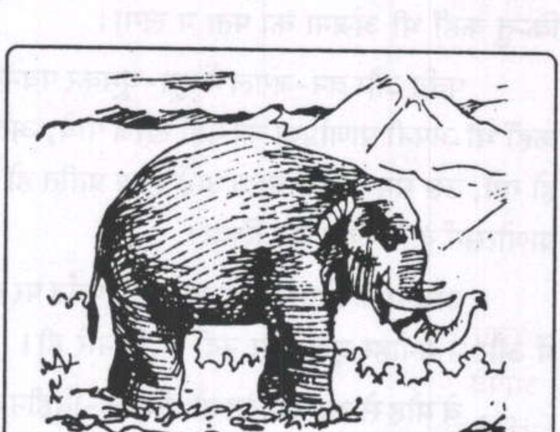

पवनंजय कुमार अत्यन्त शोकसंतप्त हो रहे हैं, उनका चित्त एक मात्र अंजना सुन्दरी के ही चिन्तवन में लगा हुआ है। वे सोच रहे हैं – "यदि मेरी प्राणप्रिया अंजना मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मैं भी इसी वन में प्राणों का परित्याग कर दूँगा।"

इस प्रकार वन में बैठे-बैठे अनेक प्रकार के विकल्पों की व्याकुलता से पवनकुमार समय व्यतीत कर रहे थे।

यहाँ शास्त्रकार कहते हैं – "पवनकुमार अंजना के ध्यान में ऐसे तल्लीन हैं कि यदि ऐसी ही तल्लीनता आत्मध्यान में हो जाये तो वह तत्क्षण मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।"

पवन और अंजना का मिलन –

इधर कुमार से विदा प्राप्त कर उनका मित्र प्रहस्त पिता के समीप पहुँचा और उन्हें सर्व वृत्तान्त से अवगत करा दिया, जिसे सुनते ही महाराज प्रहलाद शोक-संतप्त हो गये, सभी जन शोक सागर में निमग्न हो गये।

कुंवर की माता केतुमति भी पुत्र-शोक से अत्यन्त पीड़ित होकर रोते हुये प्रहस्त से बोली – "अरे प्रहस्त ! तू मेरे पुत्र को अकेला ही छोड़ आया – यह तूने ठीक नहीं किया।"

प्रहस्त ने कहा – "हे माताजी ! कुमार ने अत्यन्त आग्रह करके मुझे आपके पास यह समाचार देने हेतु भेजा है, अत: मैं आया हूँ; किन्तु अब मैं भी वापस जा रहा हूँ।"

माता ने पूछा – "कुमार कहाँ है ?"

प्रहस्त ने कहा – "जहाँ अंजना होगी, वहीं वे भी होंगे।"

माता ने पूछा – "अंजना कहाँ है ?"

प्रहस्त ने कहा – "यह मुझे ज्ञात नहीं। हे माता ! जो जीव बिना विचारे शीघ्रता से कोई कार्य करते हैं, उन्हें बाद में पछताना ही पड़ता है। आपके पुत्र ने तो यह निश्चय कर लिया है कि यदि उसे अंजना प्राप्त नहीं हुई तो वह प्राणत्याग कर देगा।"

कुमार के इस कठोर निर्णय की जानकारी प्राप्त होते ही माता सहित अन्त:पुर की समस्त स्त्रियाँ रुदन करने लगीं। विलाप करती हुई

माता कहने लगी – ''हाय ! हाय ! मुझ पापिनी ने यह क्या किया ? अरे ! मैंने महासती पर कलंक लगाया, इस कारण मेरे पुत्र का जीवन भी संदेहास्पद है। मैं क्रूरभाव की धारक, वक्रपरिणामी एवं मन्दभागिनी हूँ। मैंने बिना विचारे ही यह कार्य किया है। यह नगर, यह कुल, यह विजयार्द्ध पर्वत एवं यह सेना – कोई भी पवनंजय के बिना शोभते नहीं हैं। मेरे पुत्र समान अन्य कौन है ? जिसने रावण से भी अविजित (न जीता जाने वाला) – ऐसे वरुण राजा को क्षण मात्र में ही बंदी बना लिया। हे वत्स ! देव-गुरु की पूजा में तत्पर विनयवंत तू कहाँ है ? तेरे दुख से मैं तप्तायमान हूँ, हे पुत्र ! तू आकर मुझसे बात कर और मेरे शोक का निवारण कर।'' – इस प्रकार विलाप करती हुई वह सिर पीटने लगी।

रानी केतुमति के करुण-विलाप से सारा कुटुम्ब शोकाकुल हो गया। राजा प्रहलाद भी अश्रुधारा बहाने लगे। तत्पश्चात् राजा प्रहलाद ने सकुटुम्ब प्रहस्त के नेतृत्व में कुमार पवनंजय की खोज करने हेतु विचार किया। दोनों श्रेणियों के विद्याधरों को भी आदरपूर्वक खोज के लिये आमंत्रित कर लिया। सभी आकाशमार्ग से कुँवर की खोज हेतु निकल पड़े, क्या पृथ्वी और क्या घनघोर जंगल, क्या पर्वत और क्या गुफा – वे सर्वत्र कुमार की खोज करने के लिये विचरने लगे।

राजा प्रहलाद का एक दूत राजा प्रतिसूर्य के समीप गया और उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत कराया, जिसे सुनकर प्रतिसूर्य को बहुत शोक हुआ। अंजना को जब ये समाचार विदित हुये तो उसे पहले की अपेक्षा अधिक दुख हुआ। वह आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई रुदन करने लगी – ''हा नाथ ! मेरे प्राणाधार !! मेरा चित्त आप ही के प्रति समर्पित है, तथापि इस जन्मदुखयारी को छोड़कर आप कहाँ चले गये ? ऐसा भी क्या क्रोध कि समस्त विद्याधरों से अदृश्य हो गये। एक बार पधारकर अमृतवचन बोलो। इतने दिन तक तो आपके दर्शन की अभिलाषा से प्राणों को टिकाये रखा, अब भी यदि आपके दर्शन न हों तो इन प्राणों से

मुझे क्या प्रयोजन है ? मेरा मनोरथ था कि अब तो नाथ का समागम होगा, किन्तु मेरा यह मनोरथ भी टूट गया। अरे रे ! इस मन्दभागिनी के कारण आपको कष्ट प्राप्त करना पड़ा। आपके कष्ट की बात सुनने से पूर्व ही मेरे प्राण क्यों नहीं छूट गये।"

अंजना को इस तरह विलाप करती देख वसंतमाला कहने लगी – "हे देवी ! ऐसे वचन मत बोल। तू धैर्य धारण कर, अवश्य ही तुझे तेरे स्वामी का समागम प्राप्त होगा।"

राजा प्रतिसूर्य ने भी उसे धैर्य बँधाते हुये कहा – "हे पुत्री ! तू विश्वास रख, मैं शीघ्र ही तेरे पति को खोजकर लाऊँगा"

– इस प्रकार कहकर मन से भी तीव्र गतिमान विमान में बैठकर राजा प्रतिसूर्य ने कुमार की खोज आरम्भ कर दी। राजा प्रतिसूर्य की सहायतार्थ दोनों श्रेणियों के विद्याधर एवं लंकानिवासी भी इस कार्य में जुट गये। खोजते-खोजते वे सभी भूतरुवर वन में आये और वहाँ अंबरगोचर हाथी को देखा, जिससे सभी विद्याधरों को अपार हर्ष हुआ कि जहाँ यह हाथी है, वहीं पवनकुमार भी होंगे; क्योंकि पूर्व में भी अनेक बार कुमार इस गज के साथ देखे गये हैं।

जब विद्याधर उस अंजनगिरी समान हाथी के समीप पहुँचे तो उसे निरंकुश देखकर भयभीत हो उठे और वह हाथी भी विद्याधरों के लश्कर एवं शोर-गुल को देख-सुनकर क्षोभावस्था को प्राप्त हुआ। उसके कपाल में से मद झरने लगा और वह गर्जन करने लगा। वह तीव्र वेग से कुमार के आस-पास चक्कर लगाने लगा। जिस तरफ हाथी दौड़ता, विद्याधर उस दिशा से हट जाते। स्वामी की रक्षार्थ तत्पर वह हाथी सूँड में तलवार लेकर कुमार के समीप खड़ा हो गया, कुँवर की समीपता छोड़कर वह थोड़ा भी इधर-उधर नहीं होता था, उसके भय से विद्याधर भी समीप नहीं आ सकते थे। अन्ततोगत्वा विद्याधरों ने हथिनी के द्वारा स्नेहपूर्वक उस पर काबू पाया और समीप जाकर कुमार को देखने लगे।

कुमार तो एकदम शान्त मौन से इस प्रकार बैठे थे, मानो वे काठ के पुतले हों। विद्याधरों के अनेक प्रयत्न भी उनके चिन्तवन युक्त मौन को न तोड़ सके। जैसे ध्यानमग्न मुनिराज किसी से चर्चा-वार्ता नहीं करते, वही स्थिति इस समय कुमार की थी।

पवनंजय के माता-पिता उसका मस्तक चूमकर अश्रुपूरित नेत्रों से गद्‌गद्‌वाणी में उससे कहने लगे – "हे पुत्र ! हे विनयवान !! तू हमें त्यागकर यहाँ क्यों आया ? तू तो राजमहल का वासी है, इस वन में तूने रात्रि कैसे व्यतीत की। हे पुत्र ! तू मौन क्यों है ?"

– इस प्रकार उन्होंने हरसंभव प्रयत्न किया, पर कुमार ने एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया।

तब 'इसने मौनव्रत धारण कर अब मरण का ही निश्चय किया है' – ऐसा समझकर समस्त विद्याधरों को महाशोक हुआ और पिता सहित सभी विलाप करने लगे।

तभी अंजना के मामा राजा प्रतिसूर्य कुमार के समीप आकर कहने लगे – "सभी शान्त हो जाओ। मैं वायुकुमार (पवनकुमार) के साथ वचनालाप करूँगा।" – इतना कहकर वे कुमार के एकदम समीप गये और उसके कान में कहने लगे – "हे कुमार ! सुनो, मैं तुम्हें अंजना का वृत्तान्त सुनाता हूँ –

"संध्याभ्र नामक सुन्दर पर्वत पर अनंग-विजय नामक मुनि को केवलज्ञान होने पर इन्द्रादिक देव उनके दर्शनार्थ पधारे थे, उस समय मैं भी वहाँ पहुँचा था। केवलीप्रभु की वन्दना करने के उपरान्त जब मैं वापस अपने नगर की तरफ आ रहा था, तब मेरा विमान एक गुफा के ऊपर आया तो मैंने उस गुफा में से आता एक नारी का स्वर सुना, गुफा में पहुँचकर देखा तो वहाँ अंजना थी। जब मैंने उससे वनवास का कारण पूछा तो उसकी सखी ने मुझे सम्पूर्ण स्थिति से अवगत कराया। अंजना

शोकसतप्त हो रुदन कर रही थी, अतः मैंने उसे धैर्य बंधाया। उसी गुफा में उसने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस पुत्र की कांति से तो सारी ही गुफा ऐसी जगमगा रही थी, मानो सुवर्ण निर्मित हो।

इतनी बात सुनते ही हर्ष से रोमांचित पवनकुमार पूछने लगा – "हे महानुभाव ! अंजना कहाँ है ? और बालक तो सुख से है न ?"

प्रतिसूर्य ने कहा – "अंजना को उसके पुत्र सहित विमान में बैठाकर मैं अपने राज्य हनुमत द्वीप ले जा रहा था, तभी एकाएक मार्ग में बालक विमान से गिर पड़ा...."

बालक के गिरने की बात सुनते ही 'हाय-हाय' – ऐसे उद्गार कुमार के मुख से निकल पड़े।

तब प्रतिसूर्य ने कहा – "अरे कुमार ! चिन्ता मत करो; किन्तु उसके पश्चात् घटित घटना का श्रवण करो, जिससे तुम्हारा सम्पूर्ण दुख नष्ट हो जायेगा।

....बालक के गिरते ही मैंने विमान को नीचे उतारकर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मैंने देखा पर्वत तो खण्ड-खण्ड हो गया है और बालक एक शिला पर पड़ा-पड़ा क्रीड़ा कर रहा है। दशों दिशायें उसके तेज से जगमगा रहीं हैं। तब मैंने उस चरमशरीरी बालक को तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया। उसकी माता को भी अपूर्व आनन्द हुआ और उसका नाम 'शैलकुमार' रखा। सखी वसंतमाला एवं शैलकुमार सहित अंजना को मैं हनुमत द्वीप ले गया, वहाँ पुत्रजन्म का महान उत्सव मनाया, अतः उस बालक का 'हनुमान' – यह दूसरा नाम प्रसिद्ध हुआ।

हे कुमार ! वह पतिव्रता स्त्री अपनी सखी एवं पुत्र सहित हमारे नगर में विराजमान है, वहाँ सर्व आनन्द है।"

इस वृत्तान्त को सुनकर पवनकुमार को हार्दिक प्रसन्नता हुई और अंजना को देखने के उद्देश्य से शीघ्र ही उन सबने हनुमत द्वीप की तरफ प्रस्थान कर दिया।

नगर में पहुँचने पर राजा प्रतिसूर्य ने सभी का भव्य स्वागत किया।

जब कुमार अंजना के निकट पहुँचे तो लज्जाशील अंजना ने बालक हनुमान को कुमार के हाथों में सौंप दिया। 'मुक्तिदूत चरमशरीरी पुत्र को देखने मात्र से कुमार एवं अंजना अपने सम्पूर्ण दुख भूल गये और लम्बे अन्तराल के पश्चात् हुए इस मधुर-मिलन से दोनों को अपार हर्ष हुआ।

राजा प्रतिसूर्य ने सभी विद्याधरों को कुछ दिनों अपने यहाँ सम्मान सहित ठहराया। तत्पश्चात् सभी ने अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया। जब पवनकुमार भी जाने लगे, तब उन्होंने पवनकुमार को अत्याग्रह करके वहीं रोक लिया। हनुमत द्वीप में हनुमान देवों की तरह क्रीड़ा करते हैं और आनन्दकारी चेष्टायें करते हैं, जिन्हें देखकर माता-पिता के आनन्द का पार नहीं रहता।

इस प्रकार समय व्यतीत होता गया। हनुमान यौवनावस्था को प्राप्त हुये, कामदेव होने से उनके रूप की अद्भुतता लेखनी का विषय नहीं है। वे महाबलवान अतिशय बुद्धिमान हैं, उन्हें अल्पवय में ही अनेक विद्यायें सिद्ध हुई, उन्हें रत्नत्रय धर्म के प्रति परमप्रीति है। वे सर्व शास्त्रों के अभ्यास में प्रवीण हैं, तथा देव-गुरु-धर्म की उपासना में सदैव तत्पर हैं।

श्री हनुमान के जन्म, पवनंजय-अंजना के मिलाप की यह कथा अब यहीं समाप्त होती है। इसे पूर्ण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं–

"श्री हनुमान जन्म एवं पवनंजय-अंजना के मिलाप की यह अद्भुत कथा अनेक रसों से परिपूर्ण है। जो जीव भावपूर्वक इस कथा को सुनेंगे, सुनायेंगे व पढ़ेंगे, उन्हें धर्म में दृढ़ता प्राप्त होगी, उनके वैराग्य की अभिवृद्धि होगी, अशुभ कर्मों की निवृत्ति एवं शुभकर्मों में प्रवृत्ति होगी – इस तरह से उन्हें अनुक्रम से धर्म की अभिवृद्धि होते-होते जगत में दुर्लभ ऐसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।"

●

पाँच करोड़ मुनिराजों का मुक्तिधाम पावागढ़ सिद्धक्षेत्र और

लव-कुश वैराग्य

(वीर संवत् २४८५ में दक्षिण प्रान्त के तीर्थक्षेत्रों की वन्दना करने के उद्देश्य से आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजी स्वामी ने जब सोनगढ़ से प्रस्थान किया, तब सबसे पहला तीर्थ पावागढ़ सिद्धक्षेत्र आया। वहाँ पौष सुदी अष्टमी के दिन स्वामीजी का जो प्रवचन हुआ था, उसी के आधार से यह कथा तैयार की गई है। इस प्रवचन कथा से स्वामीजी की तीर्थों एवं तीर्थों से मुक्ति पधारे उन परम दिगम्बर भावलिंगी सन्तों के प्रति परम भक्ति का पता चलता है। साधक संतों के प्रति तीव्र भक्ति, वैराग्य की धुन और तीर्थयात्रा का उल्लास पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों में भी झलकता था।)

पावागढ़ सिद्धक्षेत्र से मुक्ति पधारे लव-कुश कुमार की अन्तरंग दशा का वर्णन करते हुए स्वामीजी इस प्रवचन में क़हते हैं –

''चैतन्य के विश्वासपूर्वक दोनों राजपुत्र स्वयं स्वानुभूति के द्वारा अन्तर में देखे हुए मार्ग पर चले गये....अहो ! देखो तो सही इन धर्मात्माओं की दशा !!! पर्वत शृंखला को भी देखो ! कैसी मनोहारी छटा है ! यहाँ आते समय जब से पावागढ़ पर्वत देखा है, तब से ही लव और कुश का जीवन आँखों के आगे झूल रहा है और उनका ही विचार आ रहा है। अहो ! धन्य उनकी मुनिदशा ! धन्य उनका वैराग्य !! और धन्य उनका जीवन !!! सीता–माता की कोख से अन्तिम जन्म लेकर उन्होंने अपना जीवन सफल कर लिया।''

श्री रामचंद्रजी के दोनों पुत्र इस पावागढ़ से मोक्ष गये हैं। रामचन्द्र और लक्ष्मण दोनों भाई क्रमश: बलदेव (बलभद्र) और वासुदेव (नारायण) थे। एक बार इन्द्र-सभा में उन दोनों के परस्पर स्नेह की प्रशंसा हुई, तब दो देव उनकी परीक्षा करने के लिए आये और लक्ष्मण के महल के आस-पास रामचन्द्रजी के मरण का कृत्रिम वातावरण बनाकर लक्ष्मण से कहने लगे – ''श्री रामचन्द्रजी का स्वर्गवास हो गया है।''

उक्त शब्द सुनते ही 'हे राम !' – ऐसा कहकर लक्ष्मण वहीं सिंहासन पर लुढ़क गये और मृत्यु को प्राप्त हुए।

देखो ! इस संसार की स्थिति ! रामचन्द्रजी तो अभी जीवित थे, परन्तु उनके मरण का समाचार सुनते ही तीव्र स्नेह के कारण लक्ष्मण की मृत्यु हो गयी।

इस घटना का वर्णन करके आचार्य देव कहते हैं – "अहो ! ऐसे क्षणभंगुर अशरण संसार में जिसका ध्यान ही एकमात्र शरणभूत और शान्ति दायक है – ऐसे परम चैतन्यतत्त्व को मैं प्रणाम करता हूँ....।

अनन्तकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुये आत्मा को शान्ति किस प्रकार प्राप्त होवे और वह मुक्ति को कैसे प्राप्त हो ? उसकी यहाँ चर्चा है–

आत्मा का ध्येय सिद्धपद है। चिदानन्द स्वरूप आत्मतत्त्व को जानकर और उसका ध्यान कर अनंत जीव सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, उसका वास्तविक स्वीकार करने पर 'मेरी आत्मा में भी ऐसा ही सिद्धपद प्रगट करने की सामर्थ्य है' – इस प्रकार अपने स्वभाव की भी प्रतीति हो जाती है।

देखो भाई ! जीवन में यदि करने योग्य कुछ है तो वह यही है कि जिससे यह आत्मा भवसमुद्र से पार हो। भव-भ्रमण के दुःखों में डूबा हुआ आत्मा जिस उपाय द्वारा संसार से पार हो अर्थात् मुक्ति प्राप्त करे, वही उपाय करने योग्य है। चैतन्य स्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाले जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप तीर्थ, उसके द्वारा भवसमुद्र से पार होते हैं, – ऐसे तीर्थ की आराधना करके अनंत जीव संसार से पार हुए हैं और मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

मुनिसुव्रत भगवान के तीर्थकाल में श्री रामचन्द्रजी के दो पुत्र, लव और कुश ऐसे रत्नत्रय तीर्थ की आराधना करके ही इस पावागढ़ सिद्धक्षेत्र से मुक्ति को प्राप्त हुए।

लक्ष्मण के स्वर्गवास के बाद जब रामचन्द्रजी ने यह बात सुनी तो वे शीघ्र ही वहाँ आये और लक्ष्मण की मृतदेह को देखकर 'यह तो जीवित है' – ऐसा मानकर उससे बातचीत करने लगे....स्नेहीजनों ने लक्ष्मण की देह के अग्नि संस्कार के लिए उन्हें बहुत समझाया; परन्तु रामचन्द्रजी ने किसी की बात नहीं सुनी और लक्ष्मण के मृतक शरीर को कन्धे पर लटकाकर घूमने लगे....।

वे उस मृतदेह के साथ खिलाने, पिलाने, नहलाने, सुलाने और बुलवाने आदि की अनेक चेष्टायें करते। यद्यपि रामचन्द्रजी को आत्मा का ज्ञान था, परन्तु अस्थिरता और मोह (चारित्र मोह) के कारण ही ये सभी चेष्टायें होती थी, इस प्रकार चेष्टायें करते-करते दिन-पर-दिन बीतने लगे।

रामचन्द्रजी धर्मात्मा होने पर भी बंधुप्रेम के मोह में पड़कर लक्ष्मण के मृतक शरीर को कंधे पर लाद कर फिर रहे हैं। अपने काका की मृत्यु और पिता की ऐसी दशा देखकर रामचन्द्रजी के पुत्र लव और कुश – दोनों संसार से वैराग्य को प्राप्त हुए।

दोनों राजकुमार छोटी उम्र में ही चैतन्य तत्त्व के जाननहार और महावैराग्यवन्त हुए। अरे ! संसार की यह स्थिति !! तीन खण्ड के धनी बलभद्र की यह दशा !!! – ऐसा विचार करके दोनों कुमार दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गये, स्वर्ण के समान उज्ज्वल कान्ति वाले वे दोनों कुमार पिताजी के पास दीक्षा लेने की स्वीकृति माँगने आये हैं। रामचन्द्रजी के सामने लक्ष्मण की मृतदेह पड़ी है और दोनों राजकुमार आकर अति विनय पूर्वक हाथ जोड़कर वैराग्य से ओतप्रोत वाणी से स्वीकृति माँगते हैं –

"हे पिताजी ! इस असार-संसार से अब बस होओ। हमें आत्मा की स्वानुभूति के द्वारा अंतर में स्थित आनंद धाम में जाने की आज्ञा दो।"

"जिसमें ठूँस-ठूँस कर (लबालब) आनन्द भरा हुआ है, ऐसा हमारा चिदानन्द स्वभाव है।' – ऐसे भानसहित लवकुश कुमार रामचन्द्रजी से कहते हैं – "हे तात् ! हमें आज्ञा दीजिये....अब हम अपने चिदानन्द स्वरूप में समा जाने की आज्ञा माँगते हैं....इस संसार में बाह्य (स्वरूप से च्युत) भाव अनंतकाल तक किये, अब हम इस संसार की स्वप्न में भी इच्छा नहीं करते.... अब तो मुनि होकर हम हमारी पूर्ण अतीन्द्रिय परम आनन्द दशा को प्राप्त करेंगे। तात् ! इस जीव ने संसार-भ्रमण करते हुए चार गति के अवतार अनन्त बार किये हैं। एकमात्र सिद्धपद कभी प्राप्त नहीं किया, अत: अब तो हम हमारे चिदानन्दस्वरूप में समा जायेंगे, और अभूतपूर्व सिद्धपद को प्राप्त करेंगे।"

लव-कुश कुमार आगे कहते हैं – "पुण्य और पाप दोनों से भिन्न हमारे ज्ञानानन्द स्वरूप को हमने जाना है और अब उसमें लीन होकर हम

हमारे सिद्धपद को साधेंगे। अब हम संसार से (पुण्य और पाप दोनों से) विरक्त होकर अपने चैतन्य स्वरूप में समा जायेंगे।''

''अरे, संसार की स्थिति बड़ी विचित्र है ! आत्मा का भान होने पर भी चारित्र मोह के उदय से यह दशा ! अरे, शरीर की यह क्षणभंगुरता! इसका क्या विश्वास करना ?

संध्या की लालिमा के समान यह संसार ! इसे छोड़कर अब हम ज्ञात अन्तर के मार्ग पर जायेंगे।''

'' इस क्षणभंगुर असार-संसार को छोड़कर हम आपसे दीक्षा लेने हेतु स्वीकृति माँगने आये हैं....अब हम दीक्षा लेकर ध्रुव चैतन्य तत्त्व का ध्यान करेंगे और उसके आनन्द में लीन होकर इसी भव से सिद्धपद प्राप्त करेंगे, अत: हमें दीक्षा की स्वीकृति देवें। हे तात् ! जिन-शासन के प्रताप से सिद्ध पद को साधनेवाला जो अन्तर का मार्ग हमने देखा है, उस अन्तर के मार्ग पर अब हम जा रहे हैं।''

– ऐसा कहकर जिनके रोम-रोम में प्रदेश-प्रदेश में वैराग्य की धारा उल्लसित हो रही है....ऐसे वे दोनों राजकुमार मुनिदीक्षा लेने के लिए वैराग्य पूर्वक पिता की आज्ञा लेकर महेन्द्र उद्यान में गये और अमृतेश्वर मुनिराज के संघ में दीक्षित हुए।

बाद में आत्मध्यानपूर्वक विचरते-विचरते यहाँ पावागढ़ पर्वत पर आये और ध्यान में लीन होकर केवलज्ञान प्रगट कर मोक्षपद प्राप्त किया। इस तरह शुद्ध रत्नत्रय रूप परमार्थ तीर्थ के द्वारा संसार से पार होकर उन्होंने मोक्षपद पाया। इस कारण यह स्थान भी व्यवहार से तीर्थ है।

अन्तर में आत्मभान करने के बाद से ही दोनों ने अन्तरंग में चैतन्य की मुक्ति का मार्ग देखा था....इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है, हमारा सुख और हमारी मुक्ति का मार्ग हमारे अन्तर में ही है – ऐसा भान तो पहले से ही था, अब वे अन्तर में देखे हुए मार्ग पर चैतन्य के आनन्द को साधने

के लिए अन्तर में ही ढल गये हैं। देखो! यहाँ बिना आत्मा को जाने, बिना आत्मा को देखे, बिना आत्मा का अनुभव किये दीक्षा लेने या मुनिपना ग्रहण करने की बात नहीं है। यह तो निःशंकपने अन्तर में देखे – जाने और अनुभव किये मार्ग पर, मुक्ति पद की साधना करने के लिए जिनने प्रयाण किया है – उनकी मुनिदशा की बात है।

दोनों कुमारों को दीक्षा लेने के पहले ही विश्वास है कि "अपने चैतन्य पद में दृष्टि करके हमने अपनी मुक्ति का मार्ग पहले ही देख लिया है, उस चैतन्य पद में गहरे-गहरे उतरकर, उसमें लीन होकर हम इसी भव में ही अपने मोक्षपद को साधेंगे। हमारा मार्ग अप्रतिहत (अबाधित) है, उस मार्ग में हमें शंका नहीं है, उसी प्रकार हम पीछे फिरने वाले भी नहीं हैं। अप्रतिहत (बिना गिरे) भाव से अन्तर स्वरूप में लीन हुए तो अब मोक्षपद को लेकर ही रहेंगे।"

– ऐसी भावना से मुनि होकर वे दोनों वन में विचरण करते होंगे और आत्मध्यान में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करके केवलज्ञान के साथ केलि (क्रीड़ा) करते होंगे। इसप्रकार भावविभोर हो स्वामीजी भी भक्ति करने लगते हैं –

धन्य मुनिश्वर लव-कुश जिनने छोड़ा सब घर बार।
कि जिनने समझा जगत असार। आतमहित में छोड़ा सब संसार।
....कि तुमने छोड़ा सब घर बार॥
बलदेव छोड़ा, वैभव छोड़ा, जाना जगत असार।
....कि तुमने जाना जगत असार॥

– इस प्रकार वन-जंगल में विचरण करते हुए वे लव-कुश मुनिवर इस पावागढ़ क्षेत्र में पधारे.... थे।

"देखो, लव-कुश मुनिवर इस पावागढ़ क्षेत्र में पधारे....और इस पर्वत पर ध्यान किया.... ध्यान करते-करते चैतन्य रस में इतने लीन हो गये कि क्षपकश्रेणी मांड कर इसी पावागढ़ पर्वत पर चैतन्य का ध्यान करते-करते उन दोनों मुनिवरों ने केवलज्ञान पाया....कृतकृत्य परमात्मा बने। – ऐसे केवलज्ञान प्राप्त अरहन्त परमात्माओं को हमारा नमस्कार !

केवलज्ञान होने के बाद अल्पकाल में यहीं से वे मोक्ष को भी प्राप्त हुए.... उनका यह सिद्धिधाम तीर्थ है....कल इसकी यात्रा (वन्दना) करना है। अभी तो दक्षिण में बाहुबली भगवान (गोम्मटेश्वर) की यात्रा करने जाना है.... उसमें बीच में अनेकों तीर्थ आवेंगे, यह तो अभी पहला पड़ाव है। जब प्रथम पड़ाव ऐसा है, तो पूरी यात्रा कैसी यादगार होगी। अब लव-कुश की कथा आगे.... चलती है।

महा मनोहर रूपवान राजकुमारों ने वैराग्य धारणकर मुनिदीक्षा ग्रहण की । अरे ! निर्मल चैतन्य स्वभावरूप पवित्रधाम, उसमें जाकर....अन्तर की गहराई में उतरकर, बाह्य से भी एकान्त और अन्तरंग में भी शान्त एकान्त धाम में उतरकर उन्होंने चैतन्य की परमात्मदशा को इसी पावागढ़ क्षेत्र में साधा है। उनके बाद लाटदेश के राजा और अन्य ५,००,००,००० (पाँच करोड़) मुनिराजों ने यहीं से अपूर्व सिद्धपद पाया है। इसलिए यह क्षेत्र (स्थान) भी पवित्रधाम सिद्धक्षेत्र कहलाता है।

लवांकुश और मदनांकुश (संक्षिप्त नाम लव और कुश) – ये दोनों राम-सीता के पुत्र थे....दोनों चरम शरीरी थे....दोनों एक साथ में जन्मे थे....दोनों ने एक साथ ही दीक्षा भी ली थी.... और दोनों ने मोक्ष भी यहीं से पाया था। एक बार युद्ध में राम-लक्ष्मण को भी उन्होंने चिंतित कर दिया था.... दोनों को चैतन्य का भान था और चैतन्य के परम आनन्द का मार्ग अन्तर में देखा था.... अन्तर में देखे मार्ग पर चलकर वे यहीं से सिद्ध परमात्मा हुये।

सुबह से लव-कुश को याद करते-करते यहाँ आये हैं....इस पावागढ़ सिद्धक्षेत्र पर जीवन में पहली बार आये हैं.... यह पावागढ़ पवित्र सिद्धक्षेत्र है....रास्ते में दूर-दूर से इसका दर्शन करके, लव-कुश को याद करते-करते यहाँ आये हैं। उन्होंने अन्तर में चिदानन्द स्वरूप शान्ति का मार्ग साधा था। यहाँ शास्त्र में भी मंगलस्वरूप ऐसे चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार करने की बात आई है।

चिदानन्दैक सद्भावं परमात्मानमव्ययम्।
प्रणमामि सदा शान्तं शान्तये सर्वकर्मणाम्॥

– पद्मनन्दि पंचविशतिका, एकत्व अधिकार

"ज्ञान और आनन्द रूप जिसका अस्तित्व है, ऐसा अविनाशी परम आत्मस्वभाव, उसे मैं प्रणाम करता हूँ, अर्थात् उसका आदर करके उसकी तरफ झुकता हूँ; क्योंकि सदा शान्त ऐसा आत्म-स्वभाव सर्व कर्मों की शान्ति का कारण है। अतः सर्व कर्मों को शान्त करने के लिए मैं अपने परम शान्तस्वरूप आत्मा को प्रणाम करता हूँ।"

देखो, इस प्रकार अपने आत्मस्वरूप को जानकर, उसका आदर करके, उसकी तरफ झुकना-प्रणाम करना ही अपूर्व मंगल है, वही मोक्ष में ले जानेवाली अपूर्व यात्रा है।

निश्चय तीर्थ स्वरूप शुद्धरत्नत्रय के स्मरण के लिए और उसका बहुमान करने के लिए ही यह तीर्थयात्रा है। तीर्थयात्रा का ऐसा भाव ज्ञानी धर्मात्माओं को तथा मुनिराजों को भी आता है। साथ ही उस भाव की मर्यादा कितनी है – यह भी वे जानते हैं।

अहा, प्रात:काल इस पावागढ़ सिद्धक्षेत्र में आये, तब से लव-कुश याद आ रहे हैं.... उनका जीवन मानो आँखों के सामने तैर रहा है। यद्यपि दोनों का विवाह हो चुका था, तथापि उन्हें अन्तर में यह भान था कि अरे, इस क्षणभंगुर संसार में कौन किसका पिता और कौन किसकी पत्नि ? कौन पुत्र और कौन माता ?

"हम तो अब अपने नित्य चिदानन्द स्वभाव की गोद में जाते हैं....वही हमारी शरण है और उसी में हमारा विश्वास है, वहीं हम जायेंगे। अनित्य संयोगों का विश्वास हमें नहीं है, अत: वहाँ हम नहीं रहेंगे.... हमें नि:शंक विश्वास है कि स्वभाव में ही हमारा सुख है और संयोगों में नहीं। अनादि से हमारे साथ रहनेवाला हमारा नित्य चिदानन्द स्वभाव, उसी का विश्वास करके अब हम उसी के पास जाकर रहेंगे....संयोगों से दूर हो जायेंगे....और स्वभाव के समीप जायेंगे....उस स्वभाव का मार्ग हमने देखा है....उस जाने हुए मार्ग में हम जायेंगे....और मुक्ति सुन्दरी का वरण करेंगे।"

देखो, यह नि:शंकता ! धर्मात्मा को अन्तर में नि:शंक भान होता है कि हमने मुक्ति का मार्ग देखा है और हम उस मार्ग पर चल रहे हैं। "यह मार्ग होगा या अन्य कोई मार्ग होगा ? आत्मा ने सम्यग्दर्शन पाया होगा या नहीं" – ऐसा कोई संदेह धर्मी को नहीं होता। हमने स्वानुभव से मार्ग देखा है और उस देखे हुए मार्ग पर हमारा आत्मा चल रहा है – ऐसी धर्मात्मा को नि:शंक दृढ़ता होती है।

मार्ग के संबंध में ऐसे नि:शंक निर्णयपूर्वक दोनों राजकुमार दीक्षा

लेकर चैतन्य में लीन हुए और केवलज्ञान प्रगटकर मोक्ष पाया। इस पावागढ़ के जिस स्थान से वे मोक्ष गये, उसके ठीक ऊपर उर्ध्वलोक में वे सिद्ध भगवान के रूप में विराजमान हैं। उर्ध्वलोक में अनंत सिद्ध भगवन्तों की पंक्ति बैठी है, उन सिद्ध भगवन्तों का स्मरण बहुमान करने में ऐसे सिद्धक्षेत्र निमित्त हैं।

लव-कुश कुमार, लाट देश के नरेन्द्र राजा और पाँच करोड़ मुनिराज – ये सब यहीं से सिद्ध भगवान बनकर लोकाग्र में विराजमान हैं। ऐसे सिद्ध भगवान को वास्तविक रूप में जानने से संसार का राग ही उड़ जाता है और सिद्ध भगवान के समान चिदानन्द स्वभाव का विश्वास हो जाता है अर्थात् सिद्धि का पंथ हाथ लग जाता है....इसी का नाम तीर्थयात्रा है, ऐसी तीर्थयात्रा करने वाला जीव संसार से तिरे बिना नहीं रहता।

लव-कुश यहाँ से सिद्ध दशा प्राप्त कर मुक्तिनगर पहुँचे....मुक्ति नगर में कोई गढ़ या बंगला आदि नहीं है, वहाँ तो चैतन्य का पूर्णानन्द स्वभाव खिल गया है, उसी का नाम मुक्तिनगर है, वहाँ वे इन इन्द्रिय विषयों से पार अतीन्द्रिय स्वभाव का निरंतर अनुभव करते हैं।

चैतन्य स्वभाव को प्राप्त परमात्मा संसार के जीवों को बताते हैं – "अरे जीवो ! तुम भी हमारे समान परमात्मा हो, तुममें भी हमारे समान ही पूर्णज्ञान और आनन्द की शक्ति भरी है, उसका विश्वास करो....और उसमें अन्तर्मुख होओ.... इसी में तुम्हारा सुख है। बाह्य इन्द्रिय विषयों में या बाह्य वृत्ति में कहीं भी तुम्हारा सुख नहीं है।"

ऐसा सर्वज्ञ भगवान का सन्देश सन्तजन परमकरुणापूर्वक जगत के जीवों को सुनाते हैं – "अरे जीवो ! अपने चिदानन्द तत्त्व को जानकर उसमें स्थिर होओ....यह मुद्दे (मूलतत्त्व) की बात है....अन्य बात तो अनादि से करते आये हो, जो बात पूर्व में कभी भी नहीं सुनी और जिससे

अपूर्व हित होता है – ऐसी मुद्दे की बात तो यही है कि ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा को जानो, उसकी महिमा और महात्म्य बराबर समझकर उसमें झुकना, वही परमात्मा को वास्तविक नमस्कार है, वही रत्नत्रय तीर्थ की वास्तविक यात्रा है और वही सिद्धि का पंथ है।

मुनिराज कहते हैं – "हमारा चिदानन्द तत्त्व शान्ति और आनन्द से भरा हुआ है, बाहर में पुण्य के ठाठ में कहीं हमारी शान्ति या आनन्द नहीं हैं, इसलिये हम तो हमारे चैतन्य में ही नमते हैं, उसी की तरफ हमारी परिणति का झुकाव है, हम चिदानन्द स्वभाव को ही प्रणाम करते हैं, चिदानन्द स्वभाव के सिवाय अन्यत्र कहीं भी हमें महात्म्य या महिमा नहीं है.... अन्तर चैतन्य स्वभाव में झुककर उसके अतीन्द्रिय आनन्द का ही हम स्वाद ले रहे हैं.... यही हमारा परमात्मतत्त्व को नमस्कार है। अन्तर्मुख परिणति के द्वारा ही परमात्मतत्त्व को सच्चा नमस्कार या प्रणाम होता है। बहिर्मुख परिणति के द्वारा परमात्मतत्त्व को सच्चा प्रणाम नहीं होता।"

श्री पद्मनन्दि मुनिराज कहते हैं – "परमात्मानं प्रणमामि सदा...." सदा परमात्मतत्त्व को प्रणाम करता हूँ। पूर्व में अनन्त काल में जिसका ख्याल नहीं था, ऐसे अपने चैतन्य स्वभाव को लक्ष में लेकर उसमें उतरकर हम हमारे चिदानन्द स्वरूप के अतीन्द्रिय आनन्द का ही स्वाद ले रहे हैं। इसके सिवाय जगत के किसी पदार्थ में हमें हमारा आनन्द भासित नहीं होता। राग में या संयोग में हम स्थित नहीं हैं, हम तो उससे च्युत होकर अपने चैतन्य में ही स्थित हैं। राग में या संयोगों में जहाँ हम नहीं हैं, वहाँ हमें मानोगे तो यह तुम्हारी मान्यता की भूल होगी। हम तो हमारे चैतन्य में ही हैं। चैतन्य का धर्म चैतन्य स्वरूप के प्रवाह में ही पकता है, राग या संयोग के प्रवाह में नहीं ? – ऐसे ही निज चैतन्य स्वभाव के आश्रय से लव-कुश मुनिराजों ने अपनी मोक्षदशा सिद्ध की है।

देखो, यहाँ सम्यग्दर्शन कैसे करना और मोक्षमार्गी कैसे बनना ?

उसकी बात है, उसी के साथ-साथ लवकुश की आत्मायें किस प्रकार यहाँ से मोक्ष को प्राप्त हुई, वह बात भी साथ में आ जाती है। लव-कुश आदि मुनिराज यहाँ से मोक्ष गये, वे इसी रीति से मुक्ति गये और यही मुक्ति का मार्ग है, यही वास्तविक मंगल है, यही उत्तम है और यही शरण रूप है। धर्मात्मा मुनिराजों को अपना चिदानन्द स्वभाव ही एकमात्र प्रिय लगता है और स्वयं को जो वस्तु प्रिय लगती है, उसका ही जगत को निमंत्रण करते हैं –

"हे जीवो ! तुम भी चिदानन्द स्वरूप ही हो। तुम भी उसी का आश्रय करके अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करो। जैसे तीर्थ में संघ का भोजन होता है अथवा लौकिकजन जिस प्रकार विवाह के बाद प्रीतिभोज कराते हैं, उसी प्रकार यहाँ मोक्ष को साधते-साधते मोक्षमार्गी सन्त जगत को अतीन्द्रिय आनन्द का प्रीतिभोज करा रहे हैं....मोक्ष के मंडप में सारे जगत को निमंत्रण करते हैं कि हे जीवो ! आओ....रे आओ.... हमारे समान तुम भी अपनी आत्मा में अन्तर्मुख होकर अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करो और पूर्ण सुखी हो जाओ।

आज यात्रा का पहला दिन है....सोनगढ़ से निकलने के बाद यह पहली यात्रा पावागढ़ सिद्ध क्षेत्र की हो रही है। अत: यहाँ से मोक्ष को प्राप्त हुए लव-कुश आदि मुनियों को याद करके वे किस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए इसकी चर्चा की। वह अलौकिक मार्ग समझकर अन्तर में उतरना, वह सिद्ध भगवन्तों को भावनमस्कार है, वह सिद्धि धाम की निश्चय यात्रा है, और वे जहाँ से मोक्ष गये – ऐसे सिद्धक्षेत्रों आदि की यात्रा-वंदना का भाव वह द्रव्य नमस्कार है, वह व्यवहार यात्रा है। – ऐसी निश्चय-व्यवहार की संधि साधक के भावों में होती है। ●

सभी आत्माओं में ज्ञान है;
परन्तु धन्य हैं वे आत्माएँ, जिनके ज्ञान में आत्मा है।